जय नानेश जय महावीर जय रामेश

जैन संस्कार पाठ्यक्रम

भाग-3

: प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-3

संस्करण- जनवरी, 2023

प्रतियाँ- 4000

मूल्य- 35/-

अर्थ सौजन्य- श्रीमती सूरजदेवी सिपाणी, कोरमंगला, बैंगलोर

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड,
गंगाशहर, बीकानेर (राज.)

आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र
राणाप्रतापनगर रोड, सुन्दरवास,
उदयपुर (राज.)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड,
गंगाशहर, बीकानेर (राज.)
फोन- 0151-2270261

भूमिका....

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें धार्मिक परीक्षा बोर्ड भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षाएँ निरन्तर चल रही हैं। जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता **१००८ श्रद्धेय आचार्य श्री रामलालजी म.सा.** से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई। अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमें 1 से 12 भाग प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन कर जीवन में कुछ पा सकेंगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान प्रदान करें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

संयोजक-धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर वहाँ परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम – भाग 1 से 12 तक

2 योग्यता – ज्ञानार्जन का अभिलाषी

3. परीक्षा का समय – माह आसोज, बदी पक्ष

4. श्रेणी निर्धारण

   प्रथम श्रेणी – 75% से अधिक

   द्वितीय श्रेणी – 50% से 75%

5. परीक्षा फल – परीक्षा फल का प्रकाशन श्रमणोपासक पत्रिका में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।

6. प्रमाण-पत्र – सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवाये जाएंगे।

7. पारितोषिक – प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा अन्य प्रोत्साहन पुरस्कार।

   – 18 वर्ष से कम उम्र के विद्यार्थियों के लिए 71% से 100% प्रथम श्रेणी।

   35% से 70% द्वितीय श्रेणी।

परीक्षार्थी ध्यान देवें!

यह धार्मिक परीक्षा ज्ञानार्जन एवं जीवन विकास हेतु है। इसमें नकल करना अथवा पुस्तक आदि देखकर लिखना या पूछकर उत्तर लिखना नियम विरूद्ध है। परीक्षा निरीक्षक अनुशासनात्मक कार्यवाही हेतु अधिकृत है।

अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	**सूत्र विभाग**		35
	श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र (12 अणुव्रत तक)	1	
II	**तत्त्व विभाग**		25
	1. जैन सिद्धान्त बत्तीसी (सिद्धान्त 17 से 32)	16	
	2. 12 चक्रवर्ती	76	
	3. 9 बलदेव	76	
	4. 9 वासुदेव	76	
	5. 9 प्रतिवासुदेव	76	
	6. छः काय का थोकड़ा	77	
III	**कथा विभाग**		10
	1. भगवान पार्श्वनाथ	79	
	2. सुलसा श्राविका	87	
	3. क्षमाधनी-खंधक मुनि	92	
IV	**काव्य विभाग**		15
	1. भक्तामर स्त्रोत (16 गाथा)	97	
	2. आत्मशुद्धि	100	
	3. वह शक्ति हमें दो	102	
	4. मनोरथ तीन उत्तम ये	103	
V	**सामान्य ज्ञान विभाग**		15
	1. जयंतिबाई के प्रश्न	104	
	2. श्रावकजी के चार विश्राम	106	
	3. देव, गुरु धर्म का स्वरूप	107	
	4. रत्नत्रय	111	
	5. सुभाषित	113	

सूत्र विभाग

।। श्री वीतरागाय नमः।।

श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र

(विधि सहित)

स्थानक में म.सा. विराजमान हों तो उन्हें तिक्खुतो के पाठ से 3 बार वंदना करें। यदि म.सा. विराजमान न हों तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुंह करके 3 बार वंदना करें। आचार्य भगवन् (अपने-अपने धर्माचार्य जी का नाम लेना) की अनुज्ञा लेकर चउवीसत्थय■ करें। यथा-आचार्य प्रवर पूज्य 1008 श्री रामलाल जी म.सा. की अनुज्ञा से दैवसिक प्रतिक्रमण एवं चउवीसत्थय करता हूँ/करते हैं। चउवीसत्थय में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कहकर कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग में दो लोगस्स मन में कहें तथा 'नमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर नवकार मंत्र और कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ (कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याया हो, मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) कहें और एक लोगस्स प्रगट बोलें। आसन छोड़कर बायां घुटना खड़ा करके दो णमोत्थु णं बोलें। दूसरे णमोत्थु णं में संपत्ताणं के स्थान पर 'संपाविउकामाणं' कहें। दो णमोत्थु णं के बाद ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' कहें ⁂-**'णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स❖ मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स'** और फिर खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके इच्छामि णं भंते का पाठ बोलें।

■ श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन एवं अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार चउवीसत्थव न होकर चउवीसत्थय है।

⁂ श्री राजप्रश्नीय आदि अनेक आगमों में क्वचित् सिद्धों व अरिहंतों के पश्चात्, अपने धर्माचार्य को नमस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दो णमोत्थु णं के पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा भी अपने धर्माचार्य की स्तुति करना आगमिक विधि है। अतः सर्वत्र दो णमोत्थु णं के पश्चात् ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' उच्चारणीय होने के कारण इस पाठ का संयोजन किया गया है।

❖ यहाँ पर अपने-अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का नाम लिया जा सकता है।

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

(प्रतिक्रमण-अनुज्ञा-सूत्र)

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं* पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय*-णाण-दंसण-चरित्ताचरित्त-तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके 'प्रथम सामायिक आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर खड़े-खड़े नवकार मंत्र, करेमि भंते का पाठ बोलकर, इच्छामि ठाइउं का पाठ बोलें।

2. इच्छामि ठाइउं का पाठ

(आत्म-विशुद्धि-सूत्र)

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसिओ✦ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे❁ दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए⁂, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खाव्वयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

✷ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयं', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियं', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासियं', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियं' शब्द बोलना चाहिये।

❖ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइय', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिय', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिय', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिय' शब्द बोलना चाहिये।

✦ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिओ', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिओ', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिओ' शब्द बोलना चाहिये।

❁ हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकावचूरि में 'तह' शब्द का उल्लेख नहीं है। अतः शुद्ध मूल पाठ का अनुसरण करते हुए 'तह' शब्द इस पाठ में नहीं रखा गया है।

⁂ श्री स्थानांग सूत्र स्थान 3 उद्देशक 1 में तीन गुप्ति संयत मनुष्यों की ही बताई है। अतः तीन गुप्ति संबंधी प्रतिक्रमण श्रावकों के लिए अकर्तव्य होने से 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखा गया है। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में भी 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है।

विधि- तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर 99 अतिचार (आगमे तिविहे से छोटी संलेखना तक के सभी पाठ) और 18 पापस्थान का पाठ कायोत्सर्ग❁ में बोलें। पाठों में जहाँ-जहाँ 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' आए वहाँ-वहाँ कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' बोलना चाहिए।

3. आगमे तिविहे सूत्र

(ज्ञान के अतिचारों का पाठ)

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, ❖घोसहीणं, जोगहीणं, सुट्ठुदिण्णं दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, ❖असज्झाइए सज्झाइयं, ❖सज्झाइए न सज्झाइयं पढ़ते-पढ़ाते विचारते ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो जो मे देवसिओ✷ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

❁ इस संशोधन से पूर्व श्रावक प्रतिक्रमण में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ कुल 6 बार तथा 18 पापस्थान का पाठ कुल 4 बार मननीय, उच्चारणीय था। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ प्रतिक्रमण में तीन बार से अधिक नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है। इस दृष्टि से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ नहीं रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. बड़ी संलेखना के बाद। 18 पापस्थान के पाठ को बड़ी संलेखना के बाद नहीं रखा गया है। इन पाठों में से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. पहले आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले, 2. श्रावक सूत्र में एवं 3. पाँचवें आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले। 18 पापस्थान को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. खामेमि सव्व जीवे के बाद।

❖ आवश्यक चूर्णि, हारिभद्रीय-आवश्यकवृत्ति आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों में 'जोगहीणं, घोसहीणं' यह क्रम न होकर 'घोसहीणं, जोगहीणं' यह क्रम है एवं इन्हीं ग्रंथों में 'असज्झाए' के स्थान पर 'असज्झाइए' और 'सज्झाए' के स्थान पर 'सज्झाइए' पाठ है। अतः शुद्ध क्रम एवं पाठ के अनुसार यहाँ संशोधन किया गया है।

✷ यहाँ और आगे भी जहाँ-जहाँ 'देवसिओ' शब्द है, वहाँ-वहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ' आदि पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

(सम्यक्त्व की शुद्धि का पाठ)

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं✦ सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥1॥
परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥2॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो। इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1 जिनवचन में शंका की हो, 2 परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3 धर्म के फल में संदेह किया हो, 4 परपाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5 परपाखण्डी का परिचय किया हो। मेरे सम्यक्त्वरूप रत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज-मैल लगा हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

5. बारह व्रतों के अतिचार

पहला स्थूल-प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा❁- 1. रोषवश गाढा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव घाला हो, 3. अवयव (चमड़ी आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. आहार (भात-पानी) का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई

✦ आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों में 'जावज्जीवाए' के स्थान पर 'जावज्जीवं' शब्द है, जावज्जीवाए शब्द रखने से छंदोभंग होता है।

❁ प्रतिक्रमण के पाठों के आरंभ में 'आलोउं' शब्द का कोई प्रयोजन नहीं है। पाठ के अंत में यथास्थान तस्स आलोउं (प्रथम आवश्यक में कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों का चिंतन करते समय) और तस्स मिच्छा मि दुक्कडं दिया जाता है। कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' द्वारा दोषों की आलोचना करने एवं चतुर्थ आवश्यक में दोषों का तस्स मिच्छा मि दुक्कडं देते हुए प्रतिक्रमण पाठों के आरंभ में 'आलोउं' बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। एतदर्थ, आगमे तिविहे, 12 व्रतों के अतिचार और 18 पापस्थानों के पाठ आदि के आरंभ में आने वाले 'आलोउं' शब्द को निष्प्रयोजनता के कारण हटाया गया है।

अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी* तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा स्थूल-मृषावाद-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. सहसाकार✦ से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री⁂ के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों●, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा स्थूल-अदत्तादान-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा- 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्यविरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल, कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-सम्भेल की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथा स्वदार संतोष❁ परदार विवर्जनरूप स्थूल-मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. इत्तरियपरिग्गहिया❖ से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3. अनंगक्रीड़ा की हो, 4. पराये का विवाह कराया हो, 5. कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवां स्थूल-परिग्रह-विरमण (परिग्रहपरिमाण) व्रत के विषय में

---

* प्रतिदिन दिवस प्रतिक्रमण में दिवस संबंधी, रात्रि के प्रतिक्रमण में रात्रि संबंधी पाक्षिक प्रतिक्रमण में पक्खी संबंधी, चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी संबंधी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में संवत्सरी संबंधी बोलना चाहिये।
✦ सोचे समझे बिना की गई कोई भी प्रवृत्ति।
⁂ स्त्री को 'अपने पुरुष' कहना चाहिये।
● मूल पाठ में 'सदारमंतभेए' पाठ के अनुसार यहाँ अपनी स्त्री के मर्म प्रकाशित किये हों, ऐसा अर्थ किया है। उपलक्षण से किसी भी व्यक्ति के मर्म प्रकाशित करना अतिचार है, ऐसा समझा जा सकता है।
❁ स्त्री को 'स्वपतिसंतोष-परपुरुष विवर्जन रूप' बोलना चाहिये।
❖ अपरिग्गहिया-अपरिगृहीता के साथ गमन किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये। स्त्री को इत्तरियरिग्गहिय इत्वरपरिगृहीत (थोड़े काल के लिये पतिरूप से स्वीकार किया) और अपरिग्गहिय-अपरिगृहीत (पतिरूप से स्वीकार नहीं किए हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये।

जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. खेत्त❀–वत्थु⁎ का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, 2. हिरण्य–सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन–धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद–चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुप्य (कांसी, पीतल, तांबा, लोहा आदि धातु तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठे दिशाव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो तो इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवां उपभोगपरिभोग–परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुष्पक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि✦ का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथे स्थूल की टिप्पणी : जिन श्रावकों ने जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण मैथुन का परित्याग कर दिया है, उनका चौथा व्रत 'स्वदारसंतोष परदार विवर्जन' न होकर 'सर्व मैथुन विरमण' रूप होता है किन्तु पाठ में परिवर्तन करना शक्य नहीं है क्योंकि 'सर्व मैथुन विरमण' की प्रतिज्ञा वाले श्रावक को 'स्वस्त्रीगमन' सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण भी करना होगा। 'स्वस्त्रीगमन' को पाँच अतिचारों में नहीं लिया गया है अतः उसके लिए अतिचार पाठ में भी भिन्नता आएगी। यद्यपि प्रतिक्रमण सूत्र में अगार धर्म के व्रतों एवं अतिचारों सम्बन्धी समुच्चय पाठ गृहीत है। तथापि प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिज्ञाओं में होने वाली न्यूनाधिकताओं का समावेश प्रतिक्रमण सूत्र में संभव नहीं है।

❀ खुली जमीन।

⁎ निर्मित मकान, दुकान आदि।

✦ जिसमें खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं, जैसे–मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गंडेरी) आदि।

पन्द्रह कर्मादान[❁] सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो, तं जहा–1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्तवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. [⁂]सर–दह–तलाय परि–सोसणया, 15. [❖]असई–पोसणया इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवें अनर्थदंड-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भंड–कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण यानि हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5. उपभोग–परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नवें सामायिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1–3. मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवें देशावकाशिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा– 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण-पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. पौषध में शय्यासंथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2.

❁ अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धों से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं। ये श्रावक के जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

⁂ श्री भगवती सूत्र, हारिभद्रीयावश्यक–वृत्ति, हस्तलिखित आवश्यकावचूरि में 'परिसोसणया' पाठ है।

❖ श्री भगवती सूत्र आदि उपर्युक्त ग्रंथों एवं आवश्यक निर्युक्ति, दीपिका, आवश्यकचूर्णि में असईजण पोषणया पाठ न होकर असई–पोषणया पाठ है।

प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चारपासवण की भूमि को देखी न हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूंजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, 5. उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा–1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढांकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4. दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, 5. ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

6. संलेखना के पाँच अतिचारों का पाठ

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा- इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

7. अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान- 1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति-अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्यादर्शनशल्य-इन अठारह पापस्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

विधि- कायोत्सर्ग पूरा होने पर 'नमो अरिहंताणं' बोलकर कायोत्सर्ग खोलें फिर नवकार मंत्र व कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'दूसरे चउवीसत्थय आवश्यक की अनुज्ञा

है' ऐसा कहकर खड़े होकर लोगस्स बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'तीसरे वन्दना आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें।

8. इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहो कायं काय संफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो[1] जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो! देवसिअं वइक्कमं[2] आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए[3] तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालिआए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो[4] कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

विधि- खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से विधिपूर्वक वंदना करके ''चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की अनुज्ञा है'' ऐसा बोलकर खड़े होकर ध्यान में कहे हुए सभी पाठ प्रगट बोलना।

इसके बाद पाठ नं. 9 **''समुच्चय पाठ''** तथा पाठ नं. 10 **''तस्स सव्वस्स''** का पाठ बोलें।

नोट - रात्रिक प्रतिक्रमण में- ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''राई वइक्कंता[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''राइयं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''राइयाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''राइओ अइयारो[4]''। **पाक्षिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''पक्खो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''पक्खियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''पक्खियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''पक्खिओ अइयारो[4]''। **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''चाउम्मासो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''चाउम्मासियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''चाउम्मासियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''चाउम्मासिओ अइयारो[4]'' एवं **संवत्सरी प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''संवच्छरो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''संवच्छरियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''संवच्छरियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''संवच्छरिओ अइयारो[4]'' पाठ बोलना चाहिये।

9. समुच्चय पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 दर्शन (सम्यक्त्व) के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के-इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते-अजानते मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

10. तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स *देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय-दुच्चिंतिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''श्रावक सूत्र की अनुज्ञा है'' इस प्रकार कहकर बैठकर दाहिना घुटना ऊँचा करके नवकार मंत्र, करेमि भंते बोलना फिर उसके बाद खड़े होकर मंगल पाठ म.सा. हो तो उनसे सुनें, न हों तो बड़े श्रावक से सुनें अन्यथा स्वयं कहें।

11. चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली-प्ररूपित धर्म का शरणा।

चार शरणा, दुःख हरणा और न शरणा कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय॥

---

* यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयस्स', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियस्स', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउमासियस्स', संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियस्स' पाठ बोलना चाहिए।

विधि- दाहिना घुटना ऊँचा रखकर बैठें व ❁इच्छामि पडिक्कमिउं (पाठ नं. 2), इच्छाकारेणं, आगमेतिविहे, दंसण समकित, 12 व्रतों का पाठ (पाठ नं. 13) बोलें।

12. दंसण समकित का पाठ

दंसणसम्मत्त-परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वावि वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य सम्मत्त-सद्दहणा।

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा- संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

13. बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं- त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़ निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं पहले स्थूल-प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए❖ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं- कन्नालीए, गवालीए●, भोमालीए, णासावहारो (थापण मोसो) कूडसक्खिजे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न

❁ प्रथम सामायिक आवश्यक में तथा पंचम कायोत्सर्ग आवश्यक में कायोत्सर्ग करने से पहले पाठ नं. 2 में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं...' ऐसा बोलते हैं लेकिन चतुर्थ आवश्यक में मांगलिक श्रवण के पश्चात् इसी पाठ में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहकर शेष पाठ पूर्ण करना चाहिए।

❖ ''विच्छेए'' पाठ अशुद्ध होने के कारण ''वोच्छेए'' किया गया है।

● हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यक चूर्णि आदि आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'गोवालीए' शुद्ध न होकर 'गवालिए' पाठ शुद्ध है।

कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए❖, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं- खात खनकर, गांठ खोलकर, ताले पर कूंची लगाकर, मार्ग में चलते को लूटकर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, ❁कूडतुलकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं- सदारसंतोसिए● अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव-देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं-न करेमि कायसा एवं चौथा स्वदार-संतोष❐ परदार-विवर्जन रूप स्थूल मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- ✷इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं- खेत्तवत्थु का यथापरिमाण, हिरण्ण सुवण्ण का यथापरिमाण, धन-धान्य का यथापरिमाण, दुपय-चउप्पय का यथापरिमाण, कुव्य का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवां स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच

❖ श्राविकाएँ 'सदारमन्तभेए' के स्थान पर 'सभत्तार मंतभेए' बोलें।

❁ आवश्यक चूर्णि आदि प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'तुल्ल' शब्द न होकर 'तुल' शब्द है।

● श्राविकाओं को 'सदारसंतोसिए' के स्थान पर 'सभत्तार संतोसिए' बोलना चाहिए।

❐ 'स्वदार संतोष-परदार विवर्जन' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को 'स्वपति संतोष-परपुरुष विवर्जन' ऐसा बोलना चाहिए।

✷ श्राविकाएं-इत्तरियपरिग्गहिय गमणे, अपरिग्गहिय गमणे कहे।

अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे, धणधण्णपमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठा दिशाव्रत- उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविह❁ तिविहेणं-न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं छठे दिशाव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसि-पमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी■, सइअन्तरद्धा जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवां व्रत- उपभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. ●दंतवणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि, 5. उवट्टणाविहि, 6. मज्जणविहि, 7. वत्थविहि, 8. विलेवणविहि, 9.पुप्फविहि, 10. आभरणविहि, 11. धूवणविहि, 12. पेज्जविहि, 13. भक्खविहि, 14. ओदणविहि, 15. सूवविहि, 16. विगयविहि, 17. सागविहि, 18. माहुरयविहि, 19. तेमणविहि, 20. पाणीयविहि, 21. मुहवासविहि, 22. वाहणविहि, 23. उवाणहविहि, 24. सयणविहि, 25. सचित्तविहि, 26. दव्वविहि- इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवां उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा-भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलि-ओसहिभक्खणया दुप्पउलि- ओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया कम्मओ य णं समणोवासएणं

❁ 'एगविहं तिविहेणं न करेमि' की जगह कोई-कोई 'दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि' बोलते हैं।

■ खेत्तवुड्ढी शब्द शुद्ध है।

● शुद्ध मूल पाठानुसार सातवें व्रत में अनेक शब्दों को परिवर्तित किया गया है। जैसे- 1. दंतणविहि के स्थान पर दंतवणविहि, 2. उवट्टणविहि के स्थान पर उवट्टणाविहि, 3. धूवविहि के स्थान पर धूवणविहि, 4. भक्खणविहि के स्थान पर भक्खविहि, 5. सूपविहि के स्थान पर सूवविहि, 6. माहुरविहि के स्थान पर माहुरयविहि, 7. जीमणविहि के स्थान पर तेमणविहि, 8. मुखवासविहि के स्थान पर मुहवासविहि

पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तं जहा ते आलोउं- इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायपरिसोसणया, असई-पोसणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत- चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तं जहा-अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवां अणट्ठादंड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- कंदप्पे *कोक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोगाइरित्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नववां सामायिक व्रत- सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा● ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है❖ एवं नववें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवां देशावकाशिक व्रत- दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग-परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं

---

* कुक्कुइए के स्थान पर कोक्कुइए शुद्ध पाठ है।

● प्रतिक्रमण करने वाले अधिकतर सामायिक ग्रहण किये हुए रहते हैं, अतः इस प्रकार की पंक्ति रखी गई है।

❖ जब सामायिक व्रत में न हो तब बोलना- ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊँ.....

तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-❁आणयणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध व्रत- असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभसेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण,सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा✦- ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, पौषध का अवसर आये पौषध करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-अप्पडिलेहिय- दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी❐, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स✷ सम्मं अणणुपालणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवां अतिथिसंविभाग व्रत- समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं -असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुंछणेणं पाडिहारियपीढफलगसेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं एवं बारहवें अतिथिसंविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, ❁मच्छरिआ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

-----| -----

❁ आणवणप्पओगे पाठ अशुद्ध होने से 'आणयणप्पओगे' पाठ किया गया है।

✦ जब पौषधव्रत में हो तब 'ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है' एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषधव्रत के..... ऐसा बोलना चाहिए।

❐ मूल पाठानुसार 'भूमि' के स्थान पर 'भूमी' शुद्ध है।

✷ मूल पाठानुसार 'पोसहस्स' के स्थान पर 'पोसहोववासस्स' शुद्ध है।

❁ मूल पाठानुसार 'मच्छरिआए' के स्थान पर 'मच्छरिआ' शुद्ध है।

जैन सिद्धान्त बत्तीसी
(सिद्धान्त 17–32)

सतरहवाँ सिद्धान्त– योग पन्द्रह

योग के तीन भेद :–

1. मनयोग 2. वचनयोग 3. काययोग

*** मनयोग के चार भेद :–**

1. सत्य मनयोग
2. मृषा मनयोग
3. सत्यमृषा मनयोग
4. असत्यमृषा मनयोग

*** वचनयोग के चार भेद :–**

1. सत्य वचनयोग
2. मृषा वचनयोग
3. सत्यमृषा वचनयोग
4. असत्यमृषा वचनयोग

*** काययोग के सात भेद :–**

1. औदारिक शरीर काययोग
2. औदारिकमिश्र शरीर काययोग
3. वैक्रिय शरीर काययोग
4. वैक्रियमिश्र शरीर काययोग
5. आहारक शरीर काययोग
6. आहारकमिश्र शरीर काययोग
7. कार्मण शरीर काययोग

- **मैं निरन्तर शुभ योगों में लीन रहूँ।**

प्रश्न 1. **योग** किसे कहते हैं?

---

17. कतिविधे णं भंते! जोए पन्नत्ते?
गोयमा! पन्नरसविधे जोए पन्नत्ते, तं जहा–
सच्चमणजोए, मोसमणजोए, सच्चामोसमणजोए, असच्चामोसमणजोए,
सच्चवइजोए, मोसवइजोए, सच्चामोसवइजोए, असच्चामोसवइजोए,
ओरालियसरीरकायजोए, ओरालियमीसासरीरकायजोए, वेउव्वियसरीरकायजोए,
वेउव्वियमीसासरीरकायजोए, आहारगसरीरकायजोए,
आहारगमीसासरीरकायजोए, कम्मासरीरकायजोए।

–श्री भगवती सूत्र, शतक 25, उद्देशक 1, सूत्र 8 (मजैवि, मधुकरजी)

उत्तर योग अर्थात् प्रवृत्ति। मन, वचन, काया की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

प्रश्न 2. सत्य मनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना सत्य मनयोग है।

प्रश्न 3. मृषा मनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के अयथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना मृषा मनयोग है।

प्रश्न 4. सत्यमृषा मनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के आंशिक यथार्थ, आंशिक अयथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना सत्यमृषा मनयोग है।

प्रश्न 5. असत्यमृषा मनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर अ = नहीं, सत्यमृषा = सत्य और मृषा। जो न सत्य है और न ही मृषा अर्थात् जिसमें पदार्थ के स्वरूप का विचार न हो, ऐसे मात्र पारस्परिक व्यवहार एवं आमन्त्रण, संबोधन आदि का चिंतन करना असत्यमृषा मनयोग है।

प्रश्न 6. सत्य वचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का कथन करना सत्य वचनयोग है।

प्रश्न 7. मृषा वचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के अयथार्थ स्वरूप का कथन करना मृषा वचनयोग है।

प्रश्न 8. सत्यमृषा वचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर पदार्थ के आंशिक यथार्थ, आंशिक अयथार्थ स्वरूप का कथन करना सत्यमृषा वचनयोग है।

प्रश्न 9. असत्यमृषा वचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जो न सत्य है और न ही मृषा अर्थात् जिसमें पदार्थ के स्वरूप का कथन न हो, ऐसे मात्र पारस्परिक व्यवहार एवं आमन्त्रण, संबोधन आदि का कथन करना असत्यमृषा वचनयोग है।

प्रश्न 10. औदारिक शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिक शरीर की प्रवृत्ति को औदारिक शरीर काययोग कहते हैं।

प्रश्न 11. औदारिकमिश्र शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिक शरीर की अपरिपक्व अवस्था में होने वाला तत्संबंधी योग औदारिकमिश्र शरीर काययोग कहलाता है। यह इन अवस्थाओं में पाया

जाता है-

1. तिर्यंचों एवं मनुष्यों में उत्पत्ति से लेकर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पूर्व तक।

2. वायुकायिक जीवों, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में वैक्रिय शरीर से मूल औदारिक शरीर में आने की प्रक्रिया में।

3. आहारक शरीर से पुनः औदारिक शरीर में आने की प्रक्रिया में।

4. केवली समुद्घात के दूसरे, छठे व सातवें समय में।

प्रश्न 12. वैक्रिय शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर वैक्रिय शरीर की प्रवृत्ति को वैक्रिय शरीर काययोग कहते हैं।

प्रश्न 13. वैक्रियमिश्र शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर वैक्रिय शरीर की अपरिपक्व अवस्था में होने वाला तत्संबंधी योग वैक्रियमिश्र शरीर काययोग कहलाता है। यह इन अवस्थाओं में संभव है-

1. नैरयिकों एवं देवों में उत्पत्ति से लेकर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पूर्व तक।

2. नैरयिकों एवं देवों में उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने एवं उत्तर वैक्रिय शरीर से मूल वैक्रिय शरीर में आने की प्रक्रिया में।

3. वायुकायिक जीवों एवं संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रियों व मनुष्यों में वैक्रिय शरीर बनाने की प्रक्रिया में।

प्रश्न 14. आहारक शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक शरीर की प्रवृत्ति को आहारक शरीर काययोग कहते हैं।

प्रश्न 15. आहारकमिश्र शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक शरीर की अपरिपक्व अवस्था में होने वाला तत्संबंधी योग आहारकमिश्र शरीर काययोग कहलाता है। यह संयत मनुष्यों में आहारक शरीर बनाने की प्रक्रिया में प्रक्रिया के प्रारंभ से लेकर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पूर्व तक होता है।

प्रश्न 16. कार्मण शरीर काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर कार्मण शरीर की प्रवृत्ति को कार्मण शरीर काययोग कहते हैं।

प्रश्न 17. कार्मण शरीर काययोग कब होता है?

उत्तर कर्मों का बंध, उदीरणा, संक्रमण, उद्वर्तना, अपवर्तना आदि कार्मण शरीर की प्रवृत्तियाँ हैं। चूंकि कार्मण शरीर की प्रवृत्तियाँ सयोगी जीव में

निरन्तर होती रहती है, अत: कार्मण शरीर काययोग भी सयोगी जीव में निरन्तर रहता है। उत्पत्ति के पूर्व विग्रहगति में अनाहारक अवस्था में चारों गति के जीवों में केवल कार्मण शरीर काययोग ही होता है इसी प्रकार केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पाँचवें- इन तीन समयों में भी मात्र कार्मण शरीर काययोग ही होता है। अत: दोनों अवसरों पर कार्मण शरीर काययोग की प्रधानता मानी जाती है।

प्रश्न 18. क्या कर्मों का उदय एवं निर्जरा भी कार्मण शरीर काययोग से होता है?

उत्तर नहीं। कर्मों के उदय एवं निर्जरा के लिए योग की आवश्यकता नहीं होती। अत: चौदहवें जीवस्थान में अयोगी जीव के भी कर्मों का उदय एवं निर्जरा होती है।

प्रश्न 19. कर्मबंध कार्मण शरीर काययोग से ही होता है, यह कैसे माना जाए?

उत्तर (i) बिना आस्रव के बंध नहीं हो सकता तथा आस्रव योग से ही संभव है, यह तत्त्वार्थ सूत्र आदि से सुस्पष्ट है। ('कायवाङ्मन:कर्म योग:' 'स आस्रव:')

(ii) विग्रह गति में अनाहारक जीव सात कर्मों का नियमत: बन्ध करता है, उस समय मात्र कार्मण शरीर काययोग ही होता है।

(iii) केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पाँचवें- इन तीनों समयों में होने वाला सातावेदनीय का बन्ध कार्मण शरीर काययोग से ही होता है। उस समय अन्य योग न होने से कर्मबंध कार्मण शरीर काययोग से ही होगा, यह सुव्यक्त है।

अत: यह स्पष्ट है कि कर्म संबंधी बन्ध आदि क्रियाएँ कार्मण शरीर काययोग से ही होती हैं।

प्रश्न 20. औदारिक, वैक्रिय, आहारक एवं कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को किस काययोग से ग्रहण किया जाता है?

उत्तर औदारिक वर्गणा के पुद्गलों को औदारिक शरीर काययोग एवं औदारिकमिश्र शरीर काययोग से ग्रहण किया जाता है। वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को वैक्रिय शरीर काययोग एवं वैक्रियमिश्र शरीर काययोग से ग्रहण किया जाता है। आहारक वर्गणा के पुद्गलों को आहारक शरीर काययोग एवं आहारकमिश्र शरीर काययोग से ग्रहण किया जाता है। कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को कार्मण शरीर काययोग से ग्रहण किया जाता है।

-----| -----

अठारहवाँ सिद्धान्त– दण्डक अर्थात् पंक्ति या क्रमिक रूप से कहने की पद्धति।

जीवों एवं चौबीस जीव वर्गणाओं के क्रमानुसार किसी विषय का वर्णन करने वाले सूत्रों को आगम में दण्डक कहा है। चौबीस वर्गणाएँ इस प्रकार हैं :–

1. पहली नैरयिकों की	2. दूसरी असुरकुमारों की
3. तीसरी नागकुमारों की	4. चौथी सुपर्णकुमारों की
5. पाँचवीं विद्युत्कुमारों की	6. छठी अग्निकुमारों की
7. सातवीं द्वीपकुमारों की	8. आठवीं उदधिकुमारों की
9. नौवीं दिशाकुमारों की	10. दसवीं वायुकुमारों की
11. ग्यारहवीं स्तनितकुमारों की	12. बारहवीं पृथ्वीकायिकों की
13. तेरहवीं अप्कायिकों की	14. चौदहवीं तेजस्कायिकों की

---

18. एगा नेरइयाणं वग्गणा, एगा असुरकुमाराणं वग्गणा, चउवीसादंडओ जाव
(एगा णागकुमाराणं वग्गणा, एगा सुवण्णकुमाराणं वग्गणा,
एगा विज्जुकुमाराणं वग्गणा, एगा अग्गिकुमाराणं वग्गणा,
एगा दीवकुमाराणं वग्गणा, एगा उदहिकुमाराणं वग्गणा,
एगा दिसाकुमाराणं वग्गणा, एगा वायुकुमाराणं वग्गणा,
एगा थणियकुमाराणं वग्गणा, एगा पुढविकाइयाणं वग्गणा,
एगा आउकाइयाणं वग्गणा, एगा तेउकाइयाणं वग्गणा,
एगा वाउकाइयाणं वग्गणा, एगा वणस्सइकाइयाणं वग्गणा,
एगा बेइंदियाणं वग्गणा, एगा तेइंदियाणं वग्गणा,
एगा चउरिंदियाणं वग्गणा, एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वग्गणा,
एगा मणुस्साणं वग्गणा, एगा वाणमंतराणं वग्गणा,
एगा जोइसियाणं वग्गणा) एगा वेमाणियाणं वग्गणा।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 1, सूत्र 41(1) (मजैवि);
स्थान 1, सूत्र 141–164 (मधुकरजी)

15. पन्द्रहवीं वायुकायिकों की 16. सोलहवीं वनस्पतिकायिकों की
17. सतरहवीं द्वीन्द्रियों की 18. अठारहवीं त्रीन्द्रियों की
19. उन्नीसवीं चतुरिन्द्रियों की 20. बीसवीं पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की
21. इक्कीसवीं मनुष्यों की 22. बाईसवीं वाणव्यंतरों की
23. तेईसवीं ज्योतिष्कों की 24. चौबीसवीं वैमानिकों की

- **मैं आगम वर्णित दण्डकों का बोध करके आत्मज्ञान को प्रकट करूँ।**

प्रश्न 1. दण्डक किसे कहते हैं?

उत्तर दण्डक का शब्दार्थ है पंक्ति। आगमों में दण्डक शब्द का अधिकांश प्रयोग चौबीस वर्गणाओं की पंक्ति के रूप में हुआ है।

प्रश्न 2. वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर किसी विशेष प्रकार की समानता वाले समुदाय को वर्गणा कहते हैं।

प्रश्न 3. क्या नैरयिक, असुरकुमार इत्यादि संबंधी प्रत्येक वर्गणा को दण्डक कहते हैं?

उत्तर नहीं। श्री स्थानांग सूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी ने एक प्राचीन गाथा उद्धृत की है–

नेरइया असुरादी पुढवाई बेंदियादयो चेव।
नर वंतर जोतिसिया वेमाणी दंडओ एवं।।

यहाँ दण्डक पद एक वचनान्त है जिसका तात्पर्य है कि नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक की पूरी पंक्ति को दण्डक कहते हैं। मात्र नैरयिकों या असुरकुमारों को दण्डक नहीं कहा जा सकता। आगमिक वर्णन भी दण्डक के इस अर्थ को पुष्ट करते हैं।

प्रश्न 4. कहीं–कहीं दण्डक शब्द में चौबीस वर्गणाओं के साथ जीव को भी ग्रहण कर लिया है। वहाँ उपर्युक्त परिभाषा कैसे घटित होगी?

उत्तर आपका कथन यथार्थ है। उन स्थलों में उपलक्षण से चौबीस वर्गणाओं के पहले जीव का कथन भी दण्डक के शब्दार्थ में समाविष्ट कर लिया गया है।

प्रश्न 5. क्या दण्डक के अर्थ को किसी व्यावहारिक उदाहरण से समझाया जा सकता है?

उत्तर दण्डक के अर्थ को एक व्यावहारिक उदाहरण से इस प्रकार समझने का प्रयत्न किया जा सकता है। यथा–

एक प्रश्नकर्त्ता ने किसी जानकार से पूछा–

प्रश्नकर्त्ता– 1. राम कौनसी कक्षा में पढ़ता है?

जानकार व्यक्ति– आठवीं में।

प्रश्नकर्त्ता– 2. लक्ष्मण कौनसी कक्षा में पढ़ता है?

जानकार व्यक्ति– दसवीं में।

इस तरह चौबीस बालकों का नाम लेकर सबके बारे में समान प्रश्न पूछा गया एवं जानकार व्यक्ति द्वारा सबका उत्तर दिया गया। इस प्रकार चौबीस बालकों के विषय में समान प्रश्न पूछने पर उनके उत्तरों के पंक्तिबद्ध सामूहिक वर्णन को दण्डक कहते हैं। जैसे यहाँ राम से लेकर चौबीस बालकों के विषय में क्रमश: प्रश्न पूछे गए एवं उत्तर प्राप्त किये गये। इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिकों के विषय में समान प्रश्न पूछने एवं उनके उत्तर प्राप्त करने संबंधी पंक्तिबद्ध सामूहिक वर्णन को दण्डक समझा जा सकता है।

-----| -----

उन्नीसवाँ सिद्धान्त– श्रमणोपासक के अणुव्रत पाँच, गुणव्रत तीन, शिक्षाव्रत चार

---

19. अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा– पंच अणुव्वयाइं, तिन्नि गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं।

पंच अणुव्वयाइं, तं जहा– थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, एवं थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिमाणे।

तिण्णि गुणव्वयाइं, तं जहा–दिसिवयं, उवभोगपरिभोगपरिमाणं, अणट्ठदंडवेरमणं। चत्तारि सिक्खावयाइं, तं जहा– सामाइयं, देसावगासियं, पोसहोववासो, अतिहिसंविभागो।

–श्री औपपातिक सूत्र, सूत्र 77 (मजैवि);
सूत्र 57 (मधुकरजी)

*** अणुव्रत पाँच :–**

1. **स्थूल प्राणातिपात विरमण**
2. **स्थूल मृषावाद विरमण**
3. **स्थूल अदत्तादान विरमण**
4. **स्वदार संतोष**
5. **इच्छा परिमाण**

*** गुणव्रत तीन :–**

6. **दिशा व्रत**
7. **उपभोग परिभोग परिमाण**
8. **अनर्थदण्ड विरमण**

*** शिक्षाव्रत चार :–**

9. **सामायिक**
10. **देशावकाशिक**
11. **पौषधोपवास**
12. **अतिथि संविभाग**

- **मानव का शुभ तन–मन पाया, व्रतधारी बनो व्रतधारी बनो।**

प्रश्न 1. **अणुव्रत, गुणव्रत** व **शिक्षाव्रत** किसे कहते हैं?

उत्तर अणुव्रत यानी छोटा व्रत। साधु के अहिंसा महाव्रत आदि की अपेक्षा छोटे होने के कारण इन्हें अणुव्रत कहते हैं।
गुणव्रत– श्रावक जीवन में गुणवृद्धि करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहते हैं।
शिक्षाव्रत– शिक्षा यानी अभ्यास। जिन व्रतों का श्रावक पुन: पुन: अभ्यास करता है, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्रश्न 2. **स्थूल प्राणातिपात विरमण** किसे कहते हैं?

उत्तर स्थूल यानी बड़े रूप में, प्राणातिपात यानी हिंसा, विरमण यानी विरत होना। जानबूझकर निरपराध त्रस जीवों को नहीं मारने का व्रत स्थूल प्राणातिपात विरमण है।

प्रश्न 3. **स्थूल मृषावाद विरमण** किसे कहते हैं?

उत्तर बड़े झूठ का त्याग करना स्थूल मृषावाद विरमण है।

प्रश्न 4. **स्थूल अदत्तादान विरमण** किसे कहते हैं?

उत्तर बड़ी चोरी का त्याग करना स्थूल अदत्तादान विरमण है।

प्रश्न 5. **स्वदार संतोष** किसे कहते हैं?

उत्तर दार अर्थात् स्त्री। स्वयं की स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों का त्याग

करना स्वदार संतोष है।

प्रश्न 6. इच्छा परिमाण किसे कहते हैं?

उत्तर धन-धान्य, पशु आदि संबंधी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना इच्छा परिमाण है।

प्रश्न 7. दिशा व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर दिशाओं की मर्यादा करना दिशा व्रत है।

प्रश्न 8. उपभोग परिभोग परिमाण किसे कहते हैं?

उत्तर खाने, पहनने आदि के पदार्थों की मर्यादा करना उपभोग परिभोग परिमाण है।

प्रश्न 9. अनर्थदण्ड विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर निष्प्रयोजन होने वाली हिंसा का त्याग करना अनर्थदण्ड विरमण है।

प्रश्न 10. सामायिक किसे कहते हैं?

उत्तर 'मुहूर्त्त' आदि काल पर्यन्त दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग करना सामायिक कहलाता है।

प्रश्न 11. देशावकाशिक किसे कहते हैं?

उत्तर दिशाओं में एक दिन संबंधी विशेष मर्यादा करना। वर्तमान में इस व्रत में दया, संवर आदि भी लिए जाते हैं।

प्रश्न 12. पौषधोपवास किसे कहते हैं?

उत्तर उपवास में दो करण तीन योग से अहोरात्र के लिए सावद्य योगों का त्याग करना पौषधोपवास कहलाता है।

प्रश्न 13. अतिथि संविभाग किसे कहते हैं?

उत्तर गृहस्थ द्वारा स्वयं हेतु बनाने, खरीदने आदि से निष्पन्न आहार, वस्त्र आदि में से मुनियों को भावभक्तिपूर्वक बहराना अतिथि संविभाग कहलाता है।

-----| -----

बीसवाँ सिद्धान्त– साधु के पाँच महाव्रत

1. **सर्व प्राणातिपात विरमण**
2. **सर्व मृषावाद विरमण**
3. **सर्व अदत्तादान विरमण**
4. **सर्व मैथुन विरमण**
5. **सर्व परिग्रह विरमण**

- **मैं पंच महाव्रतों की शुद्ध आराधना करूँ।**

प्रश्न 1. महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर महाव्रत यानी बड़े व्रत। साधु के अहिंसा आदि महाव्रतों में तीन करण तीन योग से हिंसा आदि का सम्पूर्ण त्याग होता है, किन्तु श्रावक के व्रतों में हिंसा आदि का सम्पूर्ण त्याग नहीं होता। इस प्रकार श्रावक के व्रतों से बड़े होने के कारण इन्हें महाव्रत कहते हैं।

प्रश्न 2. सर्व प्राणातिपात विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण हिंसा का तीन करण तीन योग से त्याग करना सर्व प्राणातिपात विरमण है।

प्रश्न 3. सर्व मृषावाद विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण झूठ का तीन करण तीन योग से त्याग करना सर्व मृषावाद विरमण है।

प्रश्न 4. सर्व अदत्तादान विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण चोरी का तीन करण तीन योग से त्याग करना सर्व अदत्तादान विरमण है।

प्रश्न 5. सर्व मैथुन विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण कुशील सेवन का तीन करण तीन योग से त्याग करना सर्व मैथुन विरमण है।

---

20. पंच महव्वता पन्नत्ता, तंजहा– सव्वातो पाणातिवातातो वेरमणं जाव (सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं) सव्वातो परिग्गहातो वेरमणं।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 389 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 1 (मधुकरजी)

प्रश्न 6. सर्व परिग्रह विरमण किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण परिग्रह का तीन करण तीन योग से त्याग करना सर्व परिग्रह विरमण है।

-----| -----

इक्कीसवाँ सिद्धान्त– प्रवचनमाताएँ आठ

1. **ईर्या समिति**
2. **भाषा समिति**
3. **एषणा समिति**
4. **आदान–भाण्ड–मात्र–निक्षेपणा समिति**
5. **उच्चार–प्रस्रवण–खेल–सिंघाण–जल्ल–परिष्ठापनिका समिति**
6. **मन गुप्ति**
7. **वचन गुप्ति**
8. **काय गुप्ति**

- **मैं सम्पूर्ण जिनवाणी के सार रूप प्रवचनमाता की निर्दोष पालना करूँ।**

प्रश्न 1. प्रवचन माता किसे कहते हैं?

उत्तर जिन–प्रवचन रूप द्वादशांगी वाणी का जिसमें समावेश हो जाए (प्रवचन जिसमें मा जाए / समा जाए) उसे प्रवचन माता कहते हैं।

प्रश्न 2. ईर्या समिति किसे कहते हैं?

उत्तर आवश्यकता होने पर उपयोगपूर्वक चलने को ईर्या समिति कहते हैं।

प्रश्न 3. भाषा समिति किसे कहते हैं?

---

21. अट्ठ पवयणमाताओ पण्णत्ताओ, तंजहा– इरियासमिई, भासासमिई, एसणासमिई, आयाणभंडनिक्खेवणासमिई, उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण–जल्लपरिट्ठावणियासमिई, मणगुत्ती, वतिगुत्ती, कायगुत्ती।

–श्री समवायांग सूत्र, समवाय 8, सूत्र 1 (मजैवि);
समवाय 8, सूत्र 44 (मधुकरजी)

उत्तर आवश्यकता होने पर हित, मित, प्रिय और निर्दोष वचन बोलने को भाषा समिति कहते हैं।

प्रश्न 4. एषणा समिति किसे कहते हैं?

उत्तर 42 दोष टालकर निर्दोष और परिमित भिक्षादि ग्रहण करने को एषणा समिति कहते हैं।

प्रश्न 5. आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति किसे कहते हैं?

उत्तर वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को देखकर और पूंजकर यतना से उठाने, रखने और उपयोग करने को आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति कहते हैं।

प्रश्न 6. उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनिका समिति किसे कहते हैं?

उत्तर मल-मूत्रादि त्याज्य वस्तुओं को आगमोक्त स्थान में उपयोगपूर्वक परठने को उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनिका समिति कहते हैं।

प्रश्न 7. मन गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर मन को गलत प्रवृत्ति से रोकना मन गुप्ति है।

प्रश्न 8 वचन गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर वचन को गलत प्रवृत्ति से रोकना वचन गुप्ति है।

प्रश्न 9 काय गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर काय को गलत प्रवृत्ति से रोकना काय गुप्ति है।

-----| -----

बाईसवाँ सिद्धान्त- जीवस्थान (गुणस्थान) चौदह

---

22. कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चोद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तंजहा-
मिच्छदिट्ठी, सासायणसम्मदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी, अविरतसम्मदिट्ठी, विरताविरतसम्मदिट्ठी, पमत्तसंजते, अप्पमत्तसंजते, नियट्टि-अनियट्टिबायरे, सुहुमसंपराए उवसामए वा खमए वा, उवसंतमोहे, खीणमोहे, सजोगी केवली, अजोगी केवली।

-श्री समवायांग सूत्र, समवाय 14, सूत्र 1(मजैवि);
समवाय 14, सूत्र 95(मधुकरजी)

1. **मिथ्यादृष्टि** 2. **सासादन सम्यग्दृष्टि**
3. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि** 4. **अविरत सम्यग्दृष्टि**
5. **विरताविरत सम्यग्दृष्टि (देशविरत)**
6. **प्रमत्त संयत** 7. **अप्रमत्त संयत**
8. **निवृत्ति बादर** 9. **अनिवृत्ति बादर**
10. **सूक्ष्म सम्पराय** 11. **उपशान्त मोह**
12. **क्षीण मोह** 13. **सयोगी केवली**
14. **अयोगी केवली**

- **मैं उत्तरोत्तर जीवस्थानों को प्राप्त करूँ।**

प्रश्न 1. **जीवस्थान** किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी जीवों के ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप आत्मिक गुणों के आधार पर बनने वाले विभागों को जीवस्थान कहते हैं। इन्हें गुणस्थान भी कहते हैं।

प्रश्न 2. **मिथ्यादृष्टि जीवस्थान** किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्या = विपरीत; दृष्टि = श्रद्धा, आस्था। जिन जीवों को सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर आंशिक अथवा संपूर्ण अश्रद्धा (विपरीत श्रद्धा) होती है, उन जीवों के स्थान को मिथ्यादृष्टि जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 3. **सासादन सम्यग्दृष्टि जीवस्थान** किसे कहते हैं?

उत्तर जिन सम्यग्दृष्टि जीवों का औपशमिक सम्यक्त्व नष्ट हो गया है एवं वे सम्यक्त्व से गिरकर अवश्य मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले हैं, उन जीवों की औपशमिक सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व के मध्यवर्ती सासादन सम्यग्दृष्टि जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 4. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवस्थान** किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों को सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर न श्रद्धा होती है और न अश्रद्धा— उन जीवों के स्थान को सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 5. **अविरत सम्यग्दृष्टि जीवस्थान** किसे कहते हैं?

उत्तर जो सम्यग्दृष्टि जीव पाप क्रियाओं से आंशिक रूप से भी विरत नहीं हो पाते, उन जीवों के स्थान को अविरतसम्यग्दृष्टि जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 6. विरताविरत सम्यग्दृष्टि (देशविरत) जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर विरत+अविरत = विरताविरत। जो सम्यग्दृष्टि जीव पाप क्रियाओं से आंशिक रूप से विरत होकर श्रावक जीवन को स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु पूर्ण रूप से विरत होकर साधु जीवन स्वीकार नहीं कर पाते, उन जीवों के स्थान को विरताविरत सम्यग्दृष्टि (देशविरत) जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 7. प्रमत्त संयत जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव पाप क्रियाओं से पूर्णत: विरत होकर साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं, वे संयत कहलाते हैं। प्रमाद से युक्त संयत जीवों के स्थान को प्रमत्त संयत जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 8. अप्रमत्त संयत जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद का सेवन न करने वाले संयत जीवों के स्थान को अप्रमत्त संयत जीवस्थान कहते हैं। यद्यपि आगे के सभी जीवस्थानों में अप्रमत्त अवस्था ही होती है, परन्तु जिस अप्रमत्त जीवों के जिस स्थान में निवृत्ति बादर जीवस्थान की अपेक्षा कम विशुद्धि होती है, उसे अप्रमत्त संयत जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 9. निवृत्ति बादर जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर निवृत्ति = भिन्नता। जिस जीवस्थान में समान समय में रहने वाले जीवों के भावों में भिन्नता संभव है तथा जिसमें बादर कषाय का उदय है, उस श्रेणीवर्ती जीवस्थान को निवृत्ति बादर जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 10. अनिवृत्ति बादर जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर अनिवृत्ति = अभिन्नता अर्थात् समानता। जिस जीवस्थान में समान समय में रहने वाले जीवों के भावों में समानता है तथा जिसमें बादर कषाय का उदय है, उस श्रेणीवर्ती जीवस्थान को अनिवृत्ति बादर जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 11. सूक्ष्म संपराय जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर संपराय = कषाय। जिन जीवों में बादर कषाय का उदय नहीं है, परन्तु सूक्ष्म कषाय का उदय है, उन जीवों के स्थान को सूक्ष्म संपराय जीवस्थान कहते हैं। दसवें जीवस्थान में क्रोध, मान और माया का उदय नहीं होता, सिर्फ सूक्ष्म लोभ का उदय होता है।

प्रश्न 12. उपशान्त मोह जीवस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों में मोहनीय कर्म की सत्ता (अस्तित्व) तो है, परन्तु उदय नहीं

है, उन जीवों के स्थान को उपशान्त मोह जीवस्थान कहते हैं।

प्रश्न 13. **क्षीण मोह जीवस्थान** किसे कहते हैं?

[redacted] का सर्वथा क्षय कर दिया है, परन्तु शेष सात [redacted] क्षीण मोह जीवस्थान कहते हैं।

[redacted] मोहनीय और [redacted] योग

है। मध्य के बाईस तीर्थंकरों के शासन में तथा महाविदेह क्षेत्र में यावज्जीवन सामायिक संयम होता है। पहले व चौबीसवें तीर्थंकर के शासन में अल्पकालिक (छेदोपस्थापनीय के पूर्व तक) सामायिक संयम होता है।

प्रश्न 3. छेदोपस्थापनीय संयम किसे कहते हैं?

उत्तर जिस संयम में पूर्व दीक्षा पर्याय का छेद कर महाव्रतों का आरोपण किया जाए, उसे छेदोपस्थापनीय संयम कहते हैं।

प्रश्न 4. परिहारविशुद्धि संयम किसे कहते हैं?

उत्तर जिस संयम में परिहार तप (एक विशेष प्रकार का शास्त्रोक्त तप) किया जाए, उसे परिहारविशुद्धि संयम कहते हैं।

प्रश्न 5. सूक्ष्मसंपराय संयम किसे कहते हैं?

उत्तर संपराय = कषाय। जिस संयम में कषाय का अत्यन्त सूक्ष्म उदय रहता है, उसे सूक्ष्मसंपराय संयम कहते हैं।

प्रश्न 6. यथाख्यात संयम किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय का उदय सर्वथा न होने से अतिचार रहित संयम को यथाख्यात संयम कहते हैं।

-----| -----

चौबीसवाँ सिद्धान्त- क्रियाएँ पाँच

1. **आरम्भिकी**
2. **पारिग्रहिकी**
3. **मायाप्रत्यया**
4. **अप्रत्याख्यान क्रिया**
5. **मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया**

- **मैं पाप क्रियाओं का परिहार करूँ।**

प्रश्न 1. क्रिया किसे कहते हैं?

---

24. पंच किरिताओ पन्नत्ताओ, तंजहा- आरंभिता जाव (पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया) मिच्छादंसणवत्तिता।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 2, सूत्र 419 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 2, सूत्र 112 (मधुकरजी)

उत्तर कर्मबंध के कारण रूप प्रवृत्ति को क्रिया कहते हैं।

प्रश्न 2. आरम्भिकी क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर आरम्भ अर्थात् हिंसा। आरम्भ के भावों से जुड़ी प्रवृत्ति को आरम्भिकी क्रिया कहते हैं। यह क्रिया पहले से पाँचवें जीवस्थान तक के सभी जीवों को एवं छठे जीव स्थान के अशुभयोगी जीवों को लगती है।

प्रश्न 3. पारिग्रहिकी क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर परिग्रह के भावों से जुड़ी प्रवृत्ति को पारिग्रहिकी क्रिया कहते हैं। यह पहले से पाँचवें जीवस्थान के सभी जीवों को लगती है।

प्रश्न 4. मायाप्रत्यया क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर 'माया' शब्द यहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ- इन चारों को व्यक्त करता है। माया के कारण होने वाली प्रवृत्ति को मायाप्रत्यया क्रिया कहते हैं। यह पहले से दसवें जीवस्थान तक के सभी जीवों को लगती है।

प्रश्न 5. अप्रत्याख्यान क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी व्रत प्रत्याख्यान को स्वीकार न करने वाले जीव की प्रवृत्ति को अप्रत्याख्यान क्रिया कहते हैं। यह पहले से चौथे जीवस्थान तक के सभी जीवों को लगती है।

प्रश्न 6. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन के कारण होने वाली प्रवृत्ति को मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कहते हैं। यह क्रिया पहले से तीसरे जीवस्थान तक के सभी जीवों को लगती है।

प्रश्न 7. दूसरे जीवस्थान में सासादन सम्यक्त्व होने पर भी मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया क्यों मानी है?

उत्तर इसके ये प्रमुख कारण हो सकते हैं-

- मिथ्यात्व के अभिमुख होने से
- सम्यक्त्व की उतनी विशुद्धि नहीं होने से
- अत्यल्प काल तक रहने वाला होने से

-----| -----

पच्चीसवाँ सिद्धान्त– समुद्घात सात

1. **वेदना समुद्घात**
2. **कषाय समुद्घात**
3. **मारणांतिक समुद्घात**
4. **वैक्रिय समुद्घात**
5. **तैजस समुद्घात**
6. **आहारक समुद्घात**
7. **केवली समुद्घात**

- **मैं अप्रमत्त बनकर प्रारम्भिक छहों समुद्घातों से निवृत्त बनूँ।**

प्रश्न 1. समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर वेदना आदि प्रंसगों पर आत्मा द्वारा मूल शरीर को छोड़े बिना कुछ आत्म-प्रदेशों को प्रबलता से शरीर द्वारा व्याप्त क्षेत्र से बाहर निकालना समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 2. वेदना समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर साता या असाता वेदना के फलस्वरूप होने वाला समुद्घात वेदना समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 3. कषाय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर क्रोधादि कषायों के उदय के फलस्वरूप होने वाला समुद्घात कषाय समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 4. मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर मात्र अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण आयुष्य के शेष रहने पर अर्थात् मृत्यु के अत्यन्त सन्निकट काल में मरण की वेदना के फलस्वरूप होने वाला समुद्घात मारणान्तिक समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 5. वैक्रिय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर नैरयिकों एवं देवों द्वारा नवीन वैक्रिय रूप बनाने हेतु तथा तिर्यंचों एवं

---

25. सत्त समुग्घाता पन्नत्ता, तंजहा- वेदणासमुग्घाते, कसायसमुग्घाते, मारणंतियसमुग्घाते, वेउव्वियसमुग्घाते, तेजससमुग्घाते, आहारगसमुग्घाते, केवलिसमुग्घाते।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 7, सूत्र 586 (मजैवि);
स्थान 7, सूत्र 138 (मधुकरजी)

मनुष्यों द्वारा किसी भी वैक्रिय रूप का निर्माण करने हेतु किया जाने वाला समुद्घात वैक्रिय समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 6. तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर तेजो लेश्या (उष्णता युक्त विशेष प्रकार के पुद्गल) को किसी पर प्रक्षिप्त करने (छोड़ने) हेतु तैजस पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला समुद्घात तैजस समुद्घात कहलाता है। ज्ञातव्य है कि यह तेजो लेश्या छह लेश्याओं के अन्तर्गत आई तेजो लेश्या से भिन्न है।

प्रश्न 7. आहारक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक शरीर का निर्माण करने हेतु आहारक पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला समुद्घात आहारक समुद्घात कहलाता है।

प्रश्न 8. केवली समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर वेदनीय, नाम व गोत्र-इन तीन कर्मों की स्थिति को आयु कर्म की स्थिति के तुल्य करने के लिए केवली भगवान् द्वारा मोक्ष जाने के अन्तर्मुहूर्त्त पहले किया जाने वाला समुद्घात केवली समुद्घात कहलाता है। यह समुद्घात सभी केवलियों द्वारा किया जाना अनिवार्य नहीं है।

-----| -----

छब्बीसवाँ सिद्धान्त- सर्वद्रव्य छह प्रकार के

1. **धर्मास्तिकाय**
2. **अधर्मास्तिकाय**
3. **आकाशास्तिकाय**
4. **जीवास्तिकाय**
5. **पुद्गलास्तिकाय**
6. **अद्धासमय**

---

26. कतिविधा णं भंते! सव्वदव्वा पन्नत्ता?
गोयमा! छव्विहा सव्वदव्वा पन्नत्ता, तं जहा- धम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकाये, जाव (आगासत्थिकाये, जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये) अद्धासमये।
-श्री भगवती सूत्र, शतक 25, उद्देशक 4, सूत्र 8 (मजैवि, मधुकरजी)

*** धर्मास्तिकाय पाँच प्रकार का :–**

i **द्रव्य से– एक द्रव्य**

ii **क्षेत्र से– लोक प्रमाण**

iii **काल से– शाश्वत और नित्य**

iv **भाव से– वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित**

v **गुण से– गमन गुण**

धर्मास्तिकाय असंख्येय प्रदेशों का एक द्रव्य है।

*** अधर्मास्तिकाय पाँच प्रकार का :–**

i **द्रव्य से– एक द्रव्य**

ii **क्षेत्र से– लोक प्रमाण**

iii **काल से– शाश्वत और नित्य**

iv **भाव से– वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित**

v **गुण से– स्थान गुण (स्थिरता गुण)**

अधर्मास्तिकाय असंख्येय प्रदेशों का एक द्रव्य है।

*** आकाशास्तिकाय पाँच प्रकार का :–**

i **द्रव्य से– एक द्रव्य**

धम्मत्थिकाए अवन्ने अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासते अवट्ठिते लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पन्नत्ते, तंजहा– दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ गुणओ।
दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं।
खेत्ततो लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाति णासी, न कयाइ न भवति, न कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णितिते सासते अक्खए अव्वते अवट्ठिते णिच्चे।
भावतो अवन्ने अगंधे अरसे अफासे।
गुणतो गमणगुणे।
अधम्मत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, णवरं गुणतो ठाणगुणे।

आगासत्थिकाए अवन्ने एवं चेव, णवरं खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते, गुणतो अवगाहणागुणे, सेसं तं चेव।

ii **क्षेत्र से– लोकालोक प्रमाण**

iii **काल से– शाश्वत और नित्य**

iv **भाव से– वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित**

v **गुण से– अवगाहन गुण (अवकाश देने का गुण)**

आकाशास्तिकाय अनन्त प्रदेशों का एक द्रव्य है।

*** जीवास्तिकाय पाँच प्रकार का :–**

i **द्रव्य से– अनन्त द्रव्य**

ii **क्षेत्र से– लोक प्रमाण**

iii **काल से– शाश्वत और नित्य**

iv **भाव से– वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित**

v **गुण से– उपयोग गुण**

जीवास्तिकाय में अनन्त जीव द्रव्य हैं। एक जीव में असंख्येय प्रदेश होते हैं। जीवास्तिकाय में अनन्त जीवों की अपेक्षा अनन्त प्रदेश होते हैं।

*** पुद्गलास्तिकाय पाँच प्रकार का :–**

i **द्रव्य से– अनन्त द्रव्य**

ii **क्षेत्र से– लोक प्रमाण**

iii **काल से– शाश्वत और नित्य**

iv **भाव से– वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त**

v **गुण से– ग्रहण गुण**

जीवत्थिकाए णं अवन्ने एवं चेव, णवरं दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, अरूवी जीवे सासते, गुणतो उवओगगुणे, सेसं तं चेव।

पोग्गलत्थिकाए पंचवन्ने पंचरसे दुग्गंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासते अवट्ठिते जाव दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अंणताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते, कालतो ण कयाइ णासि जाव णिच्चे, भावतो वन्नमंते, गंधमंते, रसमंते, फासमंते। गुणतो गहणगुणे।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 3, सूत्र 441 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 3, सूत्र 170–174 (मधुकरजी)

पुद्गलास्तिकाय के अन्तर्गत परमाणु, दो प्रदेशी स्कन्ध, तीन प्रदेशी स्कन्ध यावत् दस प्रदेशी स्कन्ध, संख्येय प्रदेशी स्कन्ध, असंख्येय प्रदेशी स्कन्ध, अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। इस प्रकार पुद्गलास्तिकाय में कुल अनन्त प्रदेश होते हैं।

गोयमा! असंखेज्जा धम्मत्थिकाय-पदेसा, ते सव्वे कसिणा पडिपुण्णा, निरवसेसा एगग्गहण-गहिया, एस णं गोयमा! 'धम्मत्थिकाए' त्ति वत्तव्वं सिया, एवं अहम्मत्थिकाए वि। आगासात्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाया वि एवं चेव। णवरं-पएसा अणंता भाणियव्वा। सेसं तं चेव।

-श्री भगवती सूत्र, शतक 2, उद्देशक 10, सूत्र 8 (मजैवि, मधुकरजी)

चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 4, उद्देशक 3, सूत्र 334 (मजैवि);
स्थान 4, उद्देशक 3, सूत्र 425 (मधुकरजी)

अविसेसिए पोग्गलत्थिकाए, विसेसिए परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए।

-श्री अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 216 (मजैवि, मधुकरजी)

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य।।

-श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 28, गाथा 10 (मजैवि, मधुकरजी)

अद्धासमए ण पुच्छिज्जइ, पदेसाभावा।

-श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 3, सूत्र 272 (6) (मजैवि, मधुकरजी)

धम्माधम्मे य दो चेव, वेए लोगमेत्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आकासे, समए समयखेत्तिए।।

-श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 36, गाथा 7 (मजैवि, मधुकरजी)

किमिदं भंते! समयखेत्ते त्ति पवुच्चति?
गोयमा! अड्ढाइज्जा दीवा दो य समुद्दा-एस णं एवतिए 'समयखेत्ते' त्ति पवुच्चति।

-श्री भगवती सूत्र, शतक 2, उद्देशक 9, सूत्र 1 (मजैवि, मधुकरजी)

*** अद्धासमय :–**

अद्धासमय 'समय क्षेत्र' अर्थात् अढ़ाई द्वीप में होता है। इसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं होता है। इसका गुण वर्तना गुण है। यह अप्रदेशी होता है।

- **मैं शुद्ध जीव द्रव्य हूँ– इसका अनुभव करूँ।**

प्रश्न 1. **द्रव्य** किसे कहते हैं?

उत्तर जो कभी अपने स्वरूप का परित्याग न करे अर्थात् सर्वदा अपने स्वरूप में कायम रहे, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य छह प्रकार के हैं। लोक एवं अलोक में जितने भी जीव या अजीव पदार्थ हैं वे इन छह प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी द्रव्य के अन्तर्गत अवश्य हैं अर्थात् सम्पूर्ण लोकालोक के समग्र पदार्थ किसी न किसी रूप में इन्हीं छह प्रकार के द्रव्यों की अवस्थाएँ (पर्याय) हैं।

प्रश्न 2. **धर्मास्तिकाय** किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर जुड़े हुए असंख्य प्रदेशों का समुदाय रूप वह द्रव्य, जो सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है एवं जिसके होने पर ही जीव या अजीव (पुद्गलों) की गति संभव है, उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न 3. **अधर्मास्तिकाय** किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर जुड़े हुए असंख्येय प्रदेशों का समुदाय रूप वह द्रव्य, जो सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है एवं जिसके होने पर ही जीव या अजीव (पुद्गल) का एक स्थान पर ठहरना संभव है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न 4. **आकाशास्तिकाय** किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर जुड़े हुए अनंत प्रदेशों का समुदाय रूप वह द्रव्य, जो सम्पूर्ण लोकालोक (लोक–अलोक) में व्याप्त है एवं जो जीव अथवा अजीव

कालपरमाणू पुच्छा।

गोयमा! चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा– अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे।

–श्री भगवती सूत्र, शतक 20, उद्देशक 5, सूत्र 18 (मजैवि, मधुकरजी)

तीयद्धा अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता। एवं अणागयद्धा वि। एवं सव्वद्धा वि।

–श्री भगवती सूत्र, शतक 12, उद्देशक 5, सूत्र 35 (मजैवि, मधुकरजी)

को अवकाश (स्थान) देने में सहायक है, उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न 5. **जीवास्तिकाय** किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें चेतना अर्थात् बोध शक्ति हो, उसे जीव कहते हैं। एक जीव में असंख्येय जीव प्रदेश होते हैं। लोक में कुल अनन्त जीव हैं। अनन्त जीवों के समुदाय को जीवास्तिकाय कहते हैं। (प्रश्न 5 का शेष उत्तर)

प्रश्न 6. **पुद्गलास्तिकाय** किसे कहते हैं?

उत्तर जो परस्पर मिलते-बिखरते हैं तथा जिनमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श होता है, उन्हें पुद्गल कहते हैं। कोई पुद्गल एक परमाणु रूप होता है, कोई दो प्रदेशों का समुदाय, कोई तीन प्रदेशों का समुदाय एवं इसी प्रकार कोई चार, पाँच यावत् दस, संख्येय, असंख्येय प्रदेशों का और कोई अनन्त प्रदेशों का समुदाय होता है। ऐसे पुद्गल लोक में अनंत हैं। लोक में रहे इन सभी अनंत पुद्गलों के समुदाय को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न 7. **अद्धासमय** किसे कहते हैं?

उत्तर अद्धा अर्थात् काल। यह भूत, वर्तमान, भविष्य के रूप में होता है। इसका माप समय, आवलिका, मुहूर्त्त, अहोरात्र आदि के रूप में किया जाता है। अद्धा की सूक्ष्मतम इकाई समय है। उसे अद्धासमय कहते हैं।

प्रश्न 8. **अद्धासमय** को **अप्रदेशी** क्यों कहा गया है?

उत्तर प्रदेश अर्थात् 'सबसे छोटा अंश'। अंश शब्द का व्यवहार समुदाय के होने पर ही घटित होता है क्योंकि अंश किसी समुदाय का ही होगा। वर्तमान, भूत एवं भविष्य के समय एक साथ नहीं रह सकते। वर्तमान का एक समय ही वस्तुत: अस्तित्व में रहता है। कभी भी समयों का समुदाय एक साथ नहीं रह सकता, अत: समय के प्रदेश भी संभव नहीं हैं। इस कारण से अद्धासमय को अप्रदेशी कहा गया है। इसी कारण से अद्धासमय को अस्तिकाय (प्रदेशों का समुदाय) नहीं कहा गया है।

प्रश्न 9. **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण** का क्या अर्थ है?

उत्तर **द्रव्य :-** द्रव्य शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यहाँ द्रव्य का अर्थ गिनती है। जैसे- द्रव्य से एक द्रव्य अर्थात् धर्मास्तिकाय गिनती की अपेक्षा एक ही है, दो या तीन या चार धर्मास्तिकाय नहीं है।

क्षेत्र :- क्षेत्र अर्थात् जितने स्थान में धर्मास्तिकाय आदि रहते हैं। जैसे-

धर्मास्तिकाय सम्पूर्ण लोक में है, अत: उसे लोक प्रमाण कहा है।

काल :– काल अर्थात् जितने समय तक रहे। जैसे– धर्मास्तिकाय अनादिकाल से है व सदा रहने वाला है, अत: इसे शाश्वत व नित्य कहा है।

भाव :– भाव अर्थात् वस्तु का मूल स्वभाव। यहाँ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रूप स्वभाव की अपेक्षा भाव का वर्णन किया गया है। पुद्गल में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाला स्वभाव है, शेष किसी में नहीं।

गुण :– गुण अर्थात् पदार्थ की ऐसी विशेषता जो अन्य में नहीं पाई जाए। जैसे– धर्मास्तिकाय ही समस्त जीवों एवं पुद्गलों की गति में सार्वभौम सहायक है, अत: उसका गुण गमन गुण कहलाता है।

प्रश्न 10. स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर बंधे हुए प्रदेशों के समुदाय को स्कन्ध कहते हैं।

प्रश्न 11. 'यावत्' (जाव) का क्या अर्थ है?

उत्तर थोकड़ों में 'यावत्' शब्द या 'जाव' शब्द का प्रयोग वहाँ किया जाता है, जहाँ विस्तार पूर्वक लेखन से बचना अपेक्षित है। इसके लिए 'यावत्' के पहले एक क्रम का निर्देश कर दिया जाता है। उस क्रम को उसी प्रकार बढ़ाते हुए कहाँ तक ले जाना है, यह यावत् के बाद में दिए गए शब्दों से स्पष्ट हो जाता है। 'यावत्' शब्द अक्सर उन स्थानों में भी प्रयुक्त होता है, जहाँ अन्यत्र से कोई पाठ वैसा का वैसा वहाँ (यावत् के स्थान पर) समझा जा सकता है।

उदाहरणार्थ– दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी यावत् दस प्रदेशी में 'यावत्' का तात्पर्य चार प्रदेशी, पाँच प्रदेशी, छह प्रदेशी, सात प्रदेशी, आठ प्रदेशी, नौ प्रदेशी।

इसी प्रकार थोकड़ों में जहाँ–जहाँ 'यावत्' शब्द आता है, वहाँ–वहाँ उपर्युक्त रीति से समझ लेना चाहिए।

-----| -----

सत्ताईसवाँ सिद्धान्त– पुद्गल परिणाम चार

1.	वर्ण	2.	गन्ध
3.	रस	4.	स्पर्श

*** वर्ण पाँच :–**

i	कृष्ण (काला)	ii	नील (नीला)
iii	लोहित (लाल)	iv	हारिद्र (पीला)
v	शुक्ल (सफेद)		

*** गन्ध दो :–**

i	सुरभि	ii	दुरभि

*** रस पाँच :–**

i	तिक्त (कड़वा)	ii	कटुक (तीखा)
iii	कषाय (कषैला)	iv	अम्ल (खट्टा)
v	मधुर (मीठा)		

---

27. चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पन्नत्ते, तंजहा– वन्नपरिणामे, गंधपरिणामे, रसपरिणामे, फासपरिणामे।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 4, उद्देशक 1, सूत्र 265 (मजैवि);
स्थान 4, उद्देशक 1, सूत्र 135 (मधुकरजी)

पंच वण्णा पण्णत्ता, तंजहा– किण्हा, नीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किला।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 390 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 3 (मधुकरजी)

जे गंधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता। तं जहा– सुब्भिगंधपरिणता य, दुब्भिगंधपरिणता य।

–श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 1, सूत्र 8 (2) (मजैवि, मधुकरजी)

पंच रसा पन्नत्ता, तंजहा– तित्ता जाव (कडुया, कसाया, अंबिला) मधुरा।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 390 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 1, सूत्र 4 (मधुकरजी)

*** स्पर्श आठ :–**

i **कक्खट (कठोर)**
ii **मृदु (कोमल)**
iii **गुरु (भारी)**
iv **लघु (हल्का)**
v **शीत (ठण्डा)**
vi **उष्ण (गरम)**
vii **स्निग्ध (चिकना)**
viii **रुक्ष (लूखा)**

● **मैं पुद्गल परिणामों को परिवर्तनशील अनुभव करता हुआ किसी पर भी राग–द्वेष नहीं करूँ।**

प्रश्न 1. पुद्गल परिणाम किसे कहते हैं?
उत्तर पुद्गल की विशेष अवस्था को पुद्गल परिणाम कहते हैं।

-----| -----

अट्ठ फासा पन्नत्ता, तंजहा– कक्खडे, मउते, गरुते, लहुते, सीते, उसिणे, निद्धे, लुक्खे।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 8, सूत्र 599 (मजैवि);
स्थान 8, सूत्र 13 (मधुकरजी)

अट्ठाईसवाँ सिद्धान्त– क्षेत्र प्रमाण दो

1. प्रदेश निष्पन्न
2. विभाग निष्पन्न

❋ प्रदेश निष्पन्न :–

एकप्रदेशावगाढ़
द्विप्रदेशावगाढ़
त्रिप्रदेशावगाढ़

---

28. से कि तं खेत्तप्पमाणे? 2 दुविहे पन्नत्ते। तं जहा– पदेसणिप्फण्णे य विभागणिप्फण्णे य।

से कि तं पदेसणिप्फण्णे? 2 एगपदेसोगाढे , दुपदेसोगाढे जाव संखेज्जपदेसोगाढे, असंखिज्जपदेसोगाढे। से तं पएसणिप्फण्णे।

से कि तं विभागणिप्फण्णे? 2
अंगुल विहत्थि रयणी कुच्छी धणु गाउयं च बोधव्वं।
जोयणसेढी पयरं लोगमलोगे वि य तहेव।।

–श्री अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 330–332 (मजैवि, मधुकरजी)

एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो,
दो पाया विहत्थी,
दो विहत्थीओ रयणी,
दो रयणीओ कुच्छी,
दो कुच्छीओ दंडं, धणू, जुगे, नालिया, अक्ख–मुसले
दो धणुसहस्साइं गाउयं,
चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

–श्री अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 335 (मजैवि, मधुकरजी)

चतु:प्रदेशावगाढ़
पंचप्रदेशावगाढ़
षट्प्रदेशावगाढ़
सप्तप्रदेशावगाढ़
अष्टप्रदेशावगाढ़
नवप्रदेशावगाढ़
दसप्रदेशावगाढ़
संख्येयप्रदेशावगाढ़
असंख्येयप्रदेशावगाढ़

*** विभाग निष्पन्न :–**

छह (6) अंगुलों का एक पाद (पैर)
बारह (12) अंगुलों की एक वितस्ति (बिलांत)
चौबीस (24) अंगुलों की एक रत्नि (हाथ)
अड़तालीस (48) अंगुलों की एक कुक्षि
छियानवें (96) अंगुलों का एक धनुष (दण्ड/युग/नालिका/अक्ष/मुसल)
दो हजार (2000) धनुषों का एक गव्यूत (गाउय/कोस)
चार (4) गव्यूतों का एक योजन

● **मैं असंख्येय योजन प्रमाण लोक में और परिभ्रमण नहीं करूँ।**

प्रश्न 1. क्षेत्र प्रमाण किसे कहते हैं?
उत्तर जिससे क्षेत्र नापा जाता है, उसे क्षेत्र प्रमाण कहते हैं।
प्रश्न 2. प्रदेश निष्पन्न किसे कहते हैं?
उत्तर क्षेत्र (आकाश) का सबसे छोटा हिस्सा, जिसका दूसरा हिस्सा न किया जा सके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे प्रदेशों से जो माप होता है, उसे प्रदेश निष्पन्न कहते हैं।
प्रश्न 3. एक प्रदेशावगाढ़ किसे कहते हैं?

उत्तर अवगाढ़ अर्थात् व्याप्त करके रहा हुआ। जो पदार्थ एक आकाश प्रदेश पर अवगाढ़ है अर्थात् एक आकाश प्रदेश को व्याप्त करके रहा हुआ है, वह एक प्रदेशावगाढ़ है। इसी प्रकार शेष के विषय में भी समझना चाहिए।

प्रश्न 4. विभाग निष्पन्न किसे कहते हैं?

उत्तर विविध या विशिष्ट भागों से जो नाप होता है, उसे विभाग निष्पन्न कहते हैं। यथा- अंगुल, वितस्ति (बिलांत), रत्नि (हाथ) आदि।

-----| -----

उनतीसवाँ सिद्धान्त- काल प्रमाण दो

1. **प्रदेश निष्पन्न**
2. **विभाग निष्पन्न**

* **प्रदेश निष्पन्न :-**
एक समय की स्थिति वाला
दो समय की स्थिति वाला
तीन समय की स्थिति वाला
चार समय की स्थिति वाला
पाँच समय की स्थिति वाला
छह समय की स्थिति वाला
सात समय की स्थिति वाला

---

29. से कि तं कालप्पमाणे? 2 दुविहे पण्णत्ते। तं जहा- पदेसनिप्पण्णे य विभागनिप्पण्णे य।
से कि तं पदेसनिप्पण्णे? 2 एगसमयट्ठितीए, दुसमयट्ठितीए, तिसमयट्ठितीए जाव असंखेज्जसमयट्ठिईए। से तं पदेसनिप्पण्णे।
से कि तं विभागनिप्पण्णे? 2
समयाऽऽवलिय-मुहुत्ता दिवस-अहोरत्त-पक्ख-मासा य।
संवच्छर-जुग-पलिया सागर-ओसप्पि-परिअट्टा।।
श्री अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 363-365 (मजैवि, मधुकरजी)

आठ समय की स्थिति वाला
नौ समय की स्थिति वाला
दस समय की स्थिति वाला
संख्येय समय की स्थिति वाला
असंख्येय समय की स्थिति वाला

* **विभाग निष्पन्न :–**

असंख्येय समयों की एक आवलिका
संख्येय आवलिकाओं का एक उच्छ्वास
संख्येय आवलिकाओं का एक नि:श्वास
एक उच्छ्वास–नि:श्वास का एक प्राण
सात (7) प्राणों का एक स्तोक
सात (7) स्तोकों का एक लव
सतहत्तर (77) लवों का एक मुहूर्त्त (48 मिनट)
तीस (30) मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र (24 घंटे)
पन्द्रह (15) अहोरात्रों का एक पक्ष

असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलिय त्ति पवुच्चइ।
संखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो। संखेज्जाओ आवलियाओ नीसासो।
हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसास–नीसासे एस पाणु त्ति वुच्चति।।
सत्त पाणूणि से थोवे सत्त थोवाणि से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए।।
तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाणि तेहत्तरिं च उस्सासा।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं।।
एतेणं मुहुत्तपमाणेणं तीसं मुहुत्ता अहोरत्ते,
पण्णरस अहोरत्ता पक्खो,
दो पक्खा मासो,
दो मासा उऊ,
तिण्णि उऊ अयणं,

दो (2) पक्षों का एक मास
दो (2) मासों की एक ऋतु
तीन (3) ऋतुओं का एक अयन
दो (2) अयनों का एक संवत्सर (वर्ष)
पाँच (5) संवत्सरों का एक युग
चौरासी लाख (84,00,000) वर्षों का एक पूर्वांग
चौरासी लाख (84,00,000) पूर्वांगों का एक पूर्व
चौरासी लाख (84,00,000) पूर्वों का एक त्रुटितांग

इस प्रकार पिछली संख्या में चौरासी लाख–चौरासी लाख से गुणा करते हुए क्रमशः त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हुहूकांग, हुहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपूरांग, अर्थनिपूर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग तक कहना।

दो अयणाइं संवच्छरे,
पंचसंवच्छरिए जुगे...
चउरासीई वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे,
चउरासीतिं पुव्वंगसतसहस्साइं से एगे पुव्वे,
चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे तुडियंगे,
चउरासीइं तुडियंगसयसहस्साइं से एगे तुडिए,
चउरासीइं तुडियसयसहस्साइं से एगे अडडंगे,
चउरासीइं अडडंगसयसहस्साइं से एगे अडडे,
चउरासीइं अडडसयसहस्साइं से एगे अववंगे,
चउरासीइं अववंगसयसहस्साइं से एगे अववे,
चउरासीतिं अववसतसहस्साइं से एगे हूहुयंगे,
चउरासीइं हूहुयंगसतसहस्साइं से एगे हूहुए,
एवं उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे नलिणंगे नलिणे अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे अउयंगे अउए णउयंगे णउए पउयंगे पउए चूलियंगे चूलिया, चउरासीतिं चूलियासतसहस्साइं से एगे सीसपहेलियंगे,

चौरासी लाख (84,00,000) शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका।
यहीं तक गणित है, यहीं तक गणित का विषय है, इसके बाद औपमिक काल है।
असंख्येय वर्षों का एक पल्योपम।
दस कोड़ाकोड़ी (1,00,00,00,00,00,00,000 = 10^{15}) पल्योपमों का एक सागरोपम।
दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों की एक अवसर्पिणी।
दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों की एक उत्सर्पिणी।
अनन्त अवसर्पिणियों व उत्सर्पिणियों का एक पुद्गल परावर्तन।

चउरासीतिं सीसपहेलियंगसतसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया।....
एताव ताव गणिए, एयावए चेव गणियस्स विसए, अतो परं ओवमिए।
–श्री अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 367 (मजैवि, मधुकरजी)

.... जे पल्ले जोयणं आयामविक्खंभेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिउणं सविसेसं परिरएणं। से णं एगाहिय–बेयाहिय–तेयाहिय–उक्कोसं सत्तरत्तप्परूढाणं संसट्ठे सन्निचिते भरिते वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गे नो अग्गी दहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, नो कुत्थेज्जा, नो परिविद्धंसेज्जा, नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा।
ततो णं वाससते वाससते गते एगमेगं वालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निम्मले निट्ठिते निल्लेवे अवहडे विसुद्धे भवति।
से तं पलिओवमे। गाहा–
एतेसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सागरोवमस्स तु एक्कस्स भवे परीमाणं।।
.... दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी।
दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी।
–श्री भगवती सूत्र, शतक 6, उद्देशक 7, सूत्र 7–8 (मजैवि, मधुकरजी)

ओरालियपोग्गलपरियट्टे णं भंते! केवतिकालस्स निव्वत्तिज्जति?
गोयमा! अणंतहिं ओसप्पिणि–उस्सप्पिणीहिं एवतिकालस्स निव्वत्तिज्जइ।
एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे वि।
एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टे।
–श्री भगवती सूत्र, शतक 12, उद्देशक 4, सूत्र 50–52 (मजैवि, मधुकरजी)

● मैं समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करूँ।

प्रश्न 1. काल प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर जिससे काल नापा जाता है, उसे काल प्रमाण कहते हैं।

प्रश्न 2. काल किसे कहते हैं?

उत्तर समय अथवा समयों के समुदाय को काल कहते हैं।

प्रश्न 3. काल अप्रदेशी है, फिर यहाँ काल के प्रकारों में **प्रदेश निष्पन्न** कैसे बताया है?

उत्तर यद्यपि वर्तमान काल ही विद्यमान है एवं वह एक समय प्रमाण ही है। अत: काल को अप्रदेशी कहा है, किन्तु यहाँ भूत एवं भविष्य के अविद्यमान समयों का भी कल्पना से समुदाय मानकर उसके अंश रूप एक समय को प्रदेश माना गया है। उसके आधार से काल के प्रकारों में प्रदेश निष्पन्न भी बताया है।

इस आधार पर प्रदेश निष्पन्न के भेदों में एक समय की स्थिति वाले, दो समय की स्थिति वाले यावत् असंख्येय समय की स्थिति वाले का कथन किया गया है।

प्रश्न 4. औपमिक काल किसे कहते हैं?

उत्तर जो काल उपमा से ही मापा जा सके, उसे औपमिक काल कहते हैं।

प्रश्न 5. पल्योपम किसे कहते हैं?

उत्तर पल्य से जिस काल को उपमित किया जाए, उसे पल्योपम कहते हैं। 'पल्य' का सामान्य अर्थ धान्य को भरने के लिए बना कोठा है, जो बेलनाकार (Cylindrical) होता है। यहाँ पल्य का तात्पर्य एक योजन की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई के माप वाले पल्य से है। इस संबंधी विस्तार के लिए देखें–

आगम स्तोक मंजूषा, भाग–5 में पुद्गल परावर्तन के थोकड़े के बाद।

प्रश्न 6. कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं?

उत्तर एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

1,00,00,000 (एक करोड़) x 1,00,00,000 (एक करोड़)
= 10,00,00,00,00,00,000 (एक कोड़ाकोड़ी)

प्रश्न 7. पुद्गल परावर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर पुद्गल परावर्तन को समझने हेतु इसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, एवं भाव के भेद से चार भेदों को समझना अपेक्षित है, जो कि विस्तृत है। अत: इसके विस्तृत वर्णन हेतु देखें-

आगम स्तोक मंजूषा, भाग-5 में 'पुद्गल परावर्तन का थोकड़ा'।

-----| -----

तीसवाँ सिद्धान्त- काल (समा) दो

1. **अवसर्पिणी काल**
2. **उत्सर्पिणी काल**

*** अवसर्पिणी के छह भेद :-**

i **सुषम-सुषमा**	ii **सुषमा**
iii **सुषम-दु:षमा**	iv **दु:षम-सुषमा**
v **दु:षमा**	vi **दु:षम-दु:षमा**

---

30. दो समाओ पन्नत्ताओ, तंजहा- ओसप्पिणी समा चेव उस्सप्पिणी समा चेव।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 56 (मजैवि);
स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 74 (मधुकरजी)

दुविधे काले पन्नत्ते, तंजहा- ओसप्पिणीकाले चेव उस्सप्पिणी काले चेव।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 64 (मजैवि);
स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 151 (मधुकरजी)

छव्विधा ओसप्पिणी पन्नत्ता, तंजहा- सुसमसुसमा जाव (सुसमा, सुसम-दूसमा, दूसम-सुसमा, दूसमा) दुस्समदुसमा।

छव्विधा उसप्पिणी पन्नत्ता, तंजहा- दुस्समदुस्समा जाव (दुस्समा, दुस्समसुसमा, सुसमदुस्समा, सुसमा) सुसमसुसमा।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 6, सूत्र 492 (मजैवि);
स्थान 6, सूत्र 23-24 (मधुकरजी)

*** उत्सर्पिणी के छह भेद :–**

i **दु:षम–दु:षमा** ii **दु:षमा**

iii **दु:षम–सुषमा** iv **सुषम–दु:षमा**

v **सुषमा** vi **सुषम–सुषमा**

● इस पंचम काल में भी शुद्ध धर्माराधना का सुंदर अवसर है।

प्रश्न 1. अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्यों की ऊँचाई, आयु, शक्ति आदि तथा भूमि की सरसता आदि प्राकृतिक स्थितियाँ जिस काल में निरन्तर हीन, हीनतर होती जाती हैं, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। अवसर्पिणी का अर्थ नीचे की ओर गमन है।

प्रश्न 2. उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्यों की ऊँचाई, आयु, शक्ति तथा भूमि की सरसता आदि प्राकृतिक स्थितियाँ जिस काल में निरन्तर उच्च, उच्चतर होती जाती हैं, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। उत्सर्पिणी का अर्थ ऊपर की ओर गमन है।

प्रश्न 3. सुषम–सुषमा आदि का क्या अर्थ है?

उत्तर
1. सुषम–सुषमा = बहुत अच्छा काल
2. सुषमा = अच्छा काल
3. सुषम–दु:षमा = जिस काल में अच्छापन ज्यादा हो, बुरापन कम, ऐसा काल
4. दु:षम–सुषमा = जिस काल में बुरापन ज्यादा हो, अच्छापन कम, ऐसा काल
5. दु:षमा = बुरा काल
6. दु:षम–दु:षमा = बहुत बुरा काल

-----| -----

इकतीसवाँ सिद्धान्त– जीव के विविध रीतियों से भेद

1. **जीव के दो भेद :–**
   i **आहारक** ii **अनाहारक**
2. **जीव के दो भेद :–**
   i **भाषक** ii **अभाषक**
3. **जीव के दो भेद :–**
   i **चरम** ii **अचरम**

प्रश्न 1. **आहारक** किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा द्वारा औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर के निर्माण हेतु पुद्गलों को ग्रहण करना आहार कहलाता है। जिस समय जीव आहार करता है, उस समय वह आहारक कहलाता है।

प्रश्न 2. **अनाहारक** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस समय जीव आहार नहीं करता, उस समय वह अनाहारक कहलाता है।

प्रश्न 3. **भाषक** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस समय जीव वचन योग से युक्त हो, उस समय वह भाषक कहलाता है।

प्रश्न 4. **अभाषक** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस समय जीव के वचन योग न हो, उस समय वह अभाषक कहलाता है।

---

31. (1-3).... दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा– सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।
एवं एसा गाहा फासेतव्वा जाव ससरीरी चेव असरीरी चेव–
सिद्ध-सइंदिय-काए, जोगे वेदे कसाय लेसा य।
णाणुवओगाहारे, भासग-चरिमे य ससरीरी।
–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 2, उद्देशक 4, सूत्र 112 (मजैवि);
स्थान 2, उद्देशक 4, सूत्र 410 (मधुकरजी)

प्रश्न 5. **चरम** किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव जिस अवस्था में है, उस अवस्था का अन्त होने वाला हो तो वह चरम है। यथा- भवसिद्धिक जीव चरम हैं, क्योंकि उनके सिद्ध होने पर भवसिद्धिकपने का अन्त हो जाएगा।

प्रश्न 6. **अचरम** किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव जिस अवस्था में है, उस अवस्था का सर्वथा अन्त न होने वाला हो तो वह अचरम है। यथा- अभवसिद्धिक जीव अचरम हैं, क्योंकि उनका अभवसिद्धिकपना हमेशा कायम रहेगा।

4. **जीव के तीन भेद :-**

i **परित्त** ii **अपरित्त**

iii **नो परित्त नो अपरित्त**

* **परित्त के दो भेद :-**

i **काय परित्त** ii **संसार परित्त**

* **अपरित्त के दो भेद :-**

i **काय अपरित्त** ii **संसार अपरित्त**

5. **जीव के तीन भेद :-**

i **सूक्ष्म** ii **बादर**

iii **नो सूक्ष्म नो बादर**

(4-7).... अहवा तिविधा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा-
पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, णो पज्जत्तगा णो अपज्जत्तगा।
एवं सम्मद्दिट्ठी परित्ता, पज्जत्तगा सुहुम सन्नि भविया य।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 3, उद्देशक 2, सूत्र 170 (मजैवि);
स्थान 3, उद्देशक 2, सूत्र 318 (मधुकरजी)

(8).... अहवा तिविहा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा- तसा, थावरा, नो तसा नो थावरा।

-श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 9, सूत्र 112 (मजैवि);
सूत्र 243 (मधुकरजी)

6. **जीव के तीन भेद :–**

i **संज्ञी** ii **असंज्ञी**

iii **नो संज्ञी नो असंज्ञी**

7. **जीव के तीन भेद :–**

i **भवसिद्धिक (भव्य)** ii **अभवसिद्धिक (अभव्य)**

iii **नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक (नो भव्य नो अभव्य)**

8. **जीव के तीन भेद :–**

i **त्रस** ii **स्थावर**

iii **नो त्रस नो स्थावर**

प्रश्न 7. **संसार परित्त** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीव ने एक बार भी सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) का स्पर्श कर लिया है, वह जीव संसार परित्त कहलाता है।

प्रश्न 8. **संसार अपरित्त** किसे कहते हैं?

उत्तर जिसने अनादिकाल से अब तक एक बार भी सम्यक्त्व का स्पर्श नहीं किया है, वह जीव संसार अपरित्त कहलाता है।

प्रश्न 9. **काय परित्त** किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्येकशरीरी जीव को काय परित्त कहते हैं।

प्रश्न 10. **काय अपरित्त** किसे कहते हैं?

उत्तर साधारणशरीरी जीव को काय अपरित्त कहते हैं।

प्रश्न 11. **नो परित्त नो अपरित्त** किसे कहते हैं?

उत्तर सिद्ध भगवान् नो परित्त नो अपरित्त कहलाते हैं।

प्रश्न 12. **सूक्ष्म** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीव में सूक्ष्म परिणाम उत्पन्न हो, उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म परिणाम के प्रभाव से अनन्त जीव समुदित (इकट्ठे) होने पर भी इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते तथा वे जलाने से जलते नहीं, काटने से कटते नहीं अर्थात् बादर जीवों की किसी क्रिया से प्रभावित नहीं होते। एकेन्द्रिय जीवों में ही सूक्ष्म परिणाम उत्पन्न होना संभव है।

प्रश्न 13. बादर किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीव में बादर परिणाम उत्पन्न हो, उसे बादर कहते हैं। बादर परिणाम के प्रभाव से जीव में ऐसी योग्यता प्रकट होती है कि वह इन्द्रियों के द्वारा जाना जा सके। अनेक बादर जीव जलाने से जलते हैं, काटने से कटते हैं और अनेक जलाने से जलते नहीं, काटने से कटते नहीं। एकेन्द्रियों के अलावा सभी संसारी जीव बादर ही होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में अनेक जीव बादर और अनेक जीव सूक्ष्म होते हैं। ज्ञातव्य है कि बादर परिणामों के बावजूद अनेक बादर जीव इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते।

प्रश्न 14. नो सूक्ष्म नो बादर किसे कहते हैं?

उत्तर सिद्ध भगवान् नो सूक्ष्म नो बादर कहलाते हैं।

प्रश्न 15. संज्ञी किसे कहते हैं?

उत्तर मन वाले जीवों को संज्ञी कहते हैं।

प्रश्न 16. असंज्ञी किसे कहते हैं?

उत्तर बिना मन वाले जीवों को असंज्ञी कहते हैं। नैरयिक, देवता की अपेक्षा विभंगज्ञान रहित जीव को भी असंज्ञी कहा हैं।

प्रश्न 17. नो संज्ञी नो असंज्ञी किसे कहते हैं?

उत्तर नो = नहीं। जो न संज्ञी है, न असंज्ञी, उन्हें नो संज्ञी नो असंज्ञी कहते हैं। सिद्ध भगवान नो संज्ञी नो असंज्ञी कहलाते हैं। केवली भगवान चिन्तन मनन हेतु मन का प्रयोग नहीं करते, अत: वे भी नो संज्ञी नो असंज्ञी कहलाते हैं।

प्रश्न 18. भवसिद्धिक किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव सिद्धि गति को अवश्य प्राप्त करेंगे, वे भवसिद्धिक कहलाते हैं।

प्रश्न 19. अभवसिद्धिक किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव सिद्धि गति को कभी प्राप्त नहीं करेंगे, वे अभवसिद्धिक कहलाते हैं।

प्रश्न 20. नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव सिद्धि गति को प्राप्त कर चुके हैं, वे नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक कहलाते हैं।

प्रश्न 21. त्रस किसे कहते हैं?

उत्तर इच्छापूर्वक चलने फिरने में समर्थ जीव त्रस कहलाते हैं।

प्रश्न 22. स्थावर किसे कहते हैं?

उत्तर इच्छापूर्वक चलने फिरने में असमर्थ जीव स्थावर कहलाते हैं।

प्रश्न 23. नो त्रस नो स्थावर किसे कहते हैं?

उत्तर सिद्ध भगवान् नो त्रस नो स्थावर कहलाते हैं।

9. जीव के चार भेद :–

i **संयत** ii **असंयत**

iii **संयतासंयत**

iv **नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत**

10. संसारी जीवों के दो भेद :–

i **कृष्णपाक्षिक** ii **शुक्लपाक्षिक**

11. संसारी जीवों के चौदह भेद :–

---

(9) अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा–
संजता, असंजता, संजतासंजता, णोसंजता णोअसंजता णोसंजतासंजता।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 4, उद्देशक 4, सूत्र 365 (मजैवि);
स्थान 4, उद्देशक 4, सूत्र 609 (मधुकरजी)

(10) दुविहा नेरइया पन्नत्ता, तंजहा– कण्हपक्खिया चेव सुक्कपक्खिया चेव, जाव वेमाणिया।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 2, उद्देशक 2, सूत्र 69 (मजैवि);
स्थान 2, उद्देशक 2, सूत्र 191 (मधुकरजी)

(11) कतिविधा णं भंते! संसारसमावन्नगा जीवा पन्नत्ता?
गोयमा! चोद्दसविहा संसारसमावन्नगा जीवा पन्नत्ता, तं जहा–
सुहुमा अपज्जत्तगा, सुहुमा पज्जत्तगा, बायरा अपज्जत्तगा, बादरा पज्जत्तगा, बेइंदिया अपज्जत्तगा, बेइंदिया पज्जत्तगा, एवं तेइंदिया एवं चउरिंदिया, असन्निपंचेंदिया अपज्जत्तगा, असन्निपंचेंदिया पज्जत्तगा, सन्निपंचेंदिया अपज्जत्तगा, सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा।

–श्री भगवती सूत्र, शतक 25, उद्देशक 1, सूत्र 4 (मजैवि, मधुकरजी)

i	**सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त**	ii	**सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त**
iii	**बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त**	iv	**बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त**
v	**द्वीन्द्रिय अपर्याप्त**	vi	**द्वीन्द्रिय पर्याप्त**
vii	**त्रीन्द्रिय अपर्याप्त**	viii	**त्रीन्द्रिय पर्याप्त**
ix	**चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त**	x	**चतुरिन्द्रिय पर्याप्त**
xi	**असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त**	xii	**असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त**
xiii	**संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त**	xiv	**संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त**

- **मैं सभी जीवों को अपने समान समझूँ।**

प्रश्न 24. संयत किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक संयम आदि पाँच प्रकार के संयमों में से किसी भी संयम से युक्त जीव संयत कहलाते हैं।

प्रश्न 25. असंयत किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी प्रकार का व्रत स्वीकार न करने वाले जीव असंयत कहलाते हैं।

प्रश्न 26. संयतासंयत किसे कहते हैं?

उत्तर सामायिक संयम आदि पाँच प्रकार के संयम से युक्त न होने पर भी जिन्होंने कोई न कोई व्रत प्रत्याख्यान स्वीकार किया है, उन्हें संयतासंयत कहते हैं।

प्रश्न 27. नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत किसे कहते हैं?

उत्तर सिद्ध भगवान् नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत कहलाते हैं।

प्रश्न 28. कृष्णपाक्षिक किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों का संसार काल अर्द्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक शेष है, वे जीव कृष्णपाक्षिक कहलाते हैं।

प्रश्न 29. शुक्लपाक्षिक किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों का संसार काल अर्द्ध पुद्गल परावर्तन या उससे कम शेष है, वे जीव शुक्लपाक्षिक कहलाते हैं।

प्रश्न 30. पर्याप्त किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ बताई गई हैं, उन सभी पर्याप्तियों को पूर्ण

कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है। जैसे- एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और आनापान- ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। जो एकेन्द्रिय जीव इन चारों पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेता है, वह पर्याप्त कहलाता है।

प्रश्न 31. अपर्याप्त किसे कहते हैं?

उत्तर जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ बताई गई हैं, उन सभी पर्याप्तियों को जब तक पूर्ण नहीं कर लेता, तब तक वह अपर्याप्त कहलाता है।

-----| -----

बत्तीसवाँ सिद्धान्त- सद्भाव पदार्थ नौ

1. जीव	2. अजीव	3. पुण्य
4. पाप	5. आस्रव	6. संवर
7. निर्जरा	8. बन्ध	9. मोक्ष

1. जीव के दो भेद :-

1. संसार समापन्नक (संसारी)

2. असंसार समापन्नक (सिद्ध)

---

32. नव सब्भावपयत्था पन्नत्ता, तंजहा-
जीवा, अजीवा, पुण्णं, पावं, आसवो, संवरो, निज्जरा, बंधो, मोक्खो।
-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 9, सूत्र 665 (मजैवि); स्थान 9, सूत्र 6 (मधुकरजी)

गोयमा! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
संसारसमावन्नगा य, असंसारसमावन्नगा य।
-श्री भगवती सूत्र, शतक 1, उद्देशक 1, सूत्र 7 (2) (मजैवि, मधुकरजी)

चउव्विहा संसारसमावन्नगा जीवा पन्नत्ता, तंजहा-
णेरइता, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।
-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 4, उद्देशक 4, सूत्र 365 (मजैवि); स्थान 4, उद्देशक 4, सूत्र 608 (मधुकरजी)

संसार समापन्नक के चार भेद :–

i **नैरयिक** ii **तिर्यंच**

iii **मनुष्य** iv **देव**

नैरयिक के सात भेद :–

i **रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

ii **शर्कराप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

iii **वालुकाप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

iv **पंकप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

v **धूमप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

vi **तमःप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

vii **तमस्तमःप्रभा पृथ्वी नैरयिक**

तिर्यंच के पाँच भेद :–

i **एकेन्द्रिय** ii **द्वीन्द्रिय (बेइन्द्रिय)**

iii **त्रीन्द्रिय (तेइन्द्रिय)** iv **चतुरिन्द्रिय (चउरिन्द्रिय)**

v **पंचेन्द्रिय**

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय को सामूहिक रूप से विकलेन्द्रिय भी कहते हैं।

से किं तं नेरइया? नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–
रयणप्पभापुढविनेरइया, सक्करप्पभापुढविनेरइया, वालुयप्पभापुढविनेरइया, पंकप्पभापुढविनेरइया, धूमप्पभापुढविनेरइया, तमप्पभापुढविनेरइया, तमतमप्पभापुढविनेरइया।

–श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 1, सूत्र 60 (मजैवि, मधुकरजी)

तिरिक्खजोणिया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा– एगिंदियतिरिक्खजोणिया, बेइंदियतिरिक्खजोणिया, तेइंदियतिरिक्खजोणिया, चउरिंदियतिरिक्खजोणिया, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया य।

–श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 3, सूत्र 130 (मजैवि); प्रतिपत्ति 3, सूत्र 96 (मधुकरजी)

एकेन्द्रिय के पाँच भेद :–

i **पृथ्वीकायिक** ii **अप्कायिक**

iii **तेजस्कायिक** iv **वायुकायिक**

v **वनस्पतिकायिक**

पृथ्वीकायिक के दो भेद :–

i **सूक्ष्म पृथ्वीकायिक** ii **बादर पृथ्वीकायिक**

अप्कायिक के दो भेद :–

i **सूक्ष्म अप्कायिक** ii **बादर अप्कायिक**

तेजस्कायिक के दो भेद :–

i **सूक्ष्म तेजस्कायिक** ii **बादर तेजस्कायिक**

वायुकायिक के दो भेद :–

दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, तंजहा– सुहुमा चेव बायरा चेव। एवं जाव दुविहा वणस्सतिकाइया पन्नत्ता, तंजहा– सुहुमा चेव बायरा चेव।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 63 (मजैवि);
स्थान 2, उद्देशक 1, सूत्र 123–127 (मधुकरजी)

बादरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया य साहारणसरीरबादरवणप्फइकाइया य।

–श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 1, सूत्र 37 (मजैवि, मधुकरजी)

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–
संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य।

–श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 1, सूत्र 97 (मजैवि);
प्रतिपत्ति 1, सूत्र 33 (मधुकरजी)

....पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया, थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया,
खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

....थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,
परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

i **सूक्ष्म वायुकायिक** ii **बादर वायुकायिक**

वनस्पतिकायिक के दो भेद :–

i **सूक्ष्म वनस्पतिकायिक** ii **बादर वनस्पतिकायिक**

बादर वनस्पतिकायिक के दो भेद :–

i **प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक**

ii **साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक**

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दो भेद :–

i **सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच** ii **गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच**

इन दोनों के पाँच–पाँच भेद :–

i **जलचर** ii **चतुष्पद स्थलचर**

iii **उरपरिसर्प स्थलचर** iv **भुजपरिसर्प स्थलचर**

v **खेचर**

मनुष्य के दो भेद :–

i **सम्मूर्च्छिम मनुष्य** ii **गर्भज मनुष्य**

सम्मूर्च्छिम मनुष्य के तीन भेद :–

i **कर्मभूमिज** ii **अकर्मभूमिज**

....परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,
भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

–श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 1, सूत्र 61, 69, 76 (मजैवि, मधुकरजी)

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
सम्मुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य।

–श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 1, सूत्र 92 (मजैवि, मधुकरजी)

अहवा छव्विहा मणुस्सा पन्नत्ता, तंजहा–
समुच्छिममणुस्सा— कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा।
गब्भवक्कंतियमणुस्सा— कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 6, सूत्र 490 (मजैवि);
स्थान 6, सूत्र 20 (मधुकरजी)

iii **अन्तर्द्वीपज**

गर्भज मनुष्य के तीन भेद :–

i **कर्मभूमिज** ii **अकर्मभूमिज**

iii **अन्तर्द्वीपज**

देव के चार भेद :–

i **भवनवासी** ii **वाणव्यंतर**

iii **ज्योतिष्क** iv **वैमानिक**

● **मैं अनन्त बार सभी संसारी जीवभेदों में भ्रमण कर चुका हूँ, अब मैं सिद्ध बनूँ।**

प्रश्न 1. **जीव** किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें चेतना अर्थात् बोध शक्ति हो उसे जीव कहते हैं।

प्रश्न 2. **प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस बादर वनस्पतिकायिक में एक शरीर में एक जीव है, उसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक कहते हैं।

प्रश्न 3. **साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस बादर वनस्पतिकायिक में एक शरीर में अनन्त जीव हों, उसे साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक कहते हैं। एक शरीर में रहे अनन्त जीव एक साथ जन्मते हैं, एक साथ मरते हैं, एक साथ आनापान करते हैं, उनकी शारीरिक क्रियाएँ एक साथ होती हैं।

प्रश्न 4. **गर्भज** किसे कहते हैं?

उत्तर जो जीव माता-पिता के संयोग के कारण गर्भ से उत्पन्न होते हैं, उन्हें गर्भज कहते हैं।

प्रश्न 5. **सम्मूर्च्छिम** किसे कहते हैं?

उत्तर जो मनुष्य या तिर्यंच जीव माता-पिता के संयोग के बिना, अपने योग्य उत्पत्ति स्थान में स्वत: उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें सम्मूर्च्छिम कहते हैं।

गोयमा! चउव्विहा देवा पन्नत्ता, तं जहा-

भवणवासी, वाणमंतरा, जोतिसिया, वेमाणिया।

-श्री भगवती सूत्र, शतक 13, उद्देशक 2, सूत्र 1 (मजैवि, मधुकरजी)

प्रश्न 6. **जलचर** किसे कहते हैं?

उत्तर प्रधानता से जल के आधार पर रहने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय जलचर कहलाते हैं। जैसे- मछली, कछुआ आदि।

प्रश्न 7. **चतुष्पद स्थलचर** किसे कहते हैं?

उत्तर प्रधानता से जमीन पर रहने वाले चार पैरों वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय चतुष्पद स्थलचर कहलाते हैं। जैसे- गाय, बकरी, शेर आदि।

प्रश्न 8. **उरपरिसर्प स्थलचर** किसे कहते हैं?

उत्तर प्रधानता से जमीन पर रहने वाले छाती के बल चलने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय उरपरिसर्प स्थलचर कहलाते हैं। जैसे- साँप, अजगर आदि।

प्रश्न 9. **भुजपरिसर्प स्थलचर** किसे कहते हैं?

उत्तर प्रधानता से जमीन पर रहने वाले भुजाओं के बल चलने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भुजपरिसर्प स्थलचर कहलाते हैं। जैसे- चूहा, नेवला आदि।

प्रश्न 10. **खेचर** किसे कहते हैं?

उत्तर आकाश में उड़ने में समर्थ तिर्यंच पंचेन्द्रिय अर्थात् पक्षी खेचर कहलाते हैं। जैसे- कोयल, कबूतर आदि।

प्रश्न 11. **कर्मभूमिज** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस क्षेत्र में कृषि आदि कर्म संभव है, उसे कर्मभूमि कहते हैं। भरत क्षेत्र, ऐरवत क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र कर्मभूमियाँ हैं। इनमें उत्पन्न मनुष्य कर्मभूमिज कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत रहे देवकुरु व उत्तरकुरु क्षेत्र कर्मभूमि नहीं है।

प्रश्न 12. **अकर्मभूमिज** किसे कहते हैं?

उत्तर जिस क्षेत्र में कृषि आदि कर्म कभी नहीं होते तथा जहाँ युगलिक मनुष्य निरन्तर निवास करते हैं, ऐसे क्षेत्र को अकर्मभूमि कहते हैं। हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, देवकुरु और उत्तरकुरु अकर्मभूमियाँ हैं। इनमें उत्पन्न मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि अन्तर्द्वीपों में भी युगलिक मनुष्यों का निवास है, किन्तु उन्हें अकर्मभूमि में नहीं लिया जाता। उनका कथन अलग से किया जाता है।

प्रश्न 13. **अन्तर्द्वीपज** किसे कहते हैं?

उत्तर लवण समुद्र में रहे छप्पन द्वीप विशेषों को अन्तर्द्वीप कहते हैं। यहाँ भी युगलिक मनुष्य निरन्तर निवास करते हैं। अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न मनुष्य

अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं।

2. अजीव के दो भेद :–

1. रूपी अजीव	**2. अरूपी अजीव**

1. रूपी अजीव के चार भेद :–

i **स्कन्ध**	ii **स्कन्ध के देश**
iii **स्कन्ध के प्रदेश**	iv **परमाणु पुद्गल**

2. अरूपी अजीव के दस भेद :–

i **धर्मास्तिकाय**	ii **धर्मास्तिकाय का देश**
iii **धर्मास्तिकाय के प्रदेश**	iv **अधर्मास्तिकाय**
v **अधर्मास्तिकाय का देश**	vi **अधर्मास्तिकाय के प्रदेश**
vii **आकाशास्तिकाय**	viii **आकाशास्तिकाय का देश**
ix **आकाशास्तिकाय के प्रदेश**	x **अद्धासमय (काल)**

- **मैं अनुभव करूँ कि जीव से अजीव भिन्न है।**

प्रश्न 14. अजीव किसे कहते हैं?

उत्तर जो चेतना से सर्वथा रहित है, उसे अजीव कहते हैं।

प्रश्न 15. रूपी किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो, उसे रूपी कहते हैं।

.... जे अजीवा ते दुविधा पण्णत्ता, तं जहा–
रूवी य अरूवी य।
जे रूवी ते चउव्विधा पण्णत्ता, तं जहा–
खंधा, खंधदेसा, खंधपदेसा, परमाणुपोग्गला।

–श्री भगवती सूत्र, शतक 2, उद्देशक 10, सूत्र 11 (मजैवि, मधुकरजी)

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पदेसे य आहिए।
अधम्मे तस्स देसे य, तप्पदेसे य आहिए।।
आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे।।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 36, गाथा 5–6 (मजैवि, मधुकरजी)

प्रश्न 16. अरूपी किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श न हो, उसे अरूपी कहते हैं।

प्रश्न 17. स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर परस्पर बंधे हुए प्रदेशों के समुदाय को स्कन्ध कहते हैं।

प्रश्न 18. देश किसे कहते हैं?

उत्तर हिस्से, विभाग या भाग को देश कहते हैं।

प्रश्न 19. प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर स्कन्ध का सबसे छोटा हिस्सा, जिसका और विभाग न हो सके, वह प्रदेश कहलाता है।

प्रश्न 20. परमाणु पुद्गल किसे कहते हैं?

उत्तर प्रदेश के तुल्य सूक्ष्म किन्तु स्कन्ध से नहीं जुड़े हुए स्वतंत्र पुद्गल को परमाणु पुद्गल कहते हैं।

3. **पुण्य के नौ भेद :–**

i	**अन्न पुण्य**	ii	**पान पुण्य**
iii	**वस्त्र पुण्य**	iv	**लयन पुण्य**
v	**शयन पुण्य**	vi	**मन पुण्य**
vii	**वचन पुण्य**	viii	**काय पुण्य**
ix	**नमस्कार पुण्य**		

- **मैं सुपात्र दान देकर परम पुण्य को प्राप्त करूँ।**

प्रश्न 21. पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर जिन प्रवृत्तियों से शुभ फल देने वाले कर्म बन्धते हैं, उन्हें पुण्य कहते हैं। शुभ फल देने वाले कर्मों को भी पुण्य कहते हैं।

णवविधे पुन्ने पन्नत्ते, तंजहा– अन्नपुन्ने, पाणपुन्ने, वत्थपुन्ने, लेणपुन्ने, सयणपुन्ने, मणपुन्ने, वतिपुन्ने, कायपुन्ने, नमोक्कारपुन्ने।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 9, सूत्र 676 (मजैवि);
स्थान 9, सूत्र 25 (मधुकरजी)

प्रश्न 22. लयन पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर लयन अर्थात् रहने का स्थान आदि देना लयन पुण्य कहलाता है।

प्रश्न 23. शयन पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर सोने, बैठने में उपयोगी पाट, पाटला आदि देना शयन पुण्य कहलाता है।

4. पाप के अठारह भेद :-

i	**प्राणातिपात**	ii	**मृषावाद**
iii	**अदत्तादान**	iv	**मैथुन**
v	**परिग्रह**	vi	**क्रोध**
vii	**मान**	viii	**माया**
ix	**लोभ**	x	**राग**
xi	**द्वेष**	xii	**कलह**
xiii	**अभ्याख्यान**	xiv	**पैशुन्य**
xv	**पर परिवाद**	xvi	**अरति रति**
xvii	**माया मृषा**	xviii	**मिथ्यादर्शन शल्य**

कहं णं भंते! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति?

कालोदाई! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाकुलं विससंमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाते भद्दए भवति, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे, दुरूवत्ताए दुग्गंधत्ताए जाव महस्सवए (स.6 उ.3 सु.2(1)) जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एवामेव कालोदाई! जीवाणं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले, तस्स णं आवाते भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एवं खलु कालोदाई! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवाग, जाव कज्जंति।

-श्री भगवती सूत्र, शतक 7, उद्देशक 10, सूत्र 16 (मजैवि, मधुकरजी)

एगे पाणातिवाए जाव (एगे मुसावाए, एगे अदिण्णादाणे, एगे मेहुणे) एगे परिग्गहे, एगे कोधे जाव (एगे माणे, एगा माया, एगे) लोभे, एगे पेज्जे, एगे दोसे जाव (एगे कलहे, एगे अब्भक्खाणे, एगे पेसुन्ने) एगे परपरिवाए। एगा अरतिरती। एगे मायामोसे। एगे मिच्छादंसणसल्ले।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 1, सूत्र 39 (मजैवि);
स्थान 1, सूत्र 91-108 (मधुकरजी)

• मैं दु:ख के एकमात्र कारण रूप पाप का पूर्णत: परित्याग करूँ।

प्रश्न 24. पाप किसे कहते हैं?

उत्तर जिन प्रवृत्तियों से अशुभफल देने वाले कर्म बन्धते हैं, उन्हें पाप कहते हैं। अशुभ फल देने वाले कर्मों को भी पाप कहते हैं।

प्रश्न 25. प्राणातिपात किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसा को प्राणातिपात कहते हैं।

प्रश्न 26. मृषावाद किसे कहते हैं?

उत्तर झूठ को मृषावाद कहते हैं।

प्रश्न 27. अदत्तादान किसे कहते हैं?

उत्तर चोरी को अदत्तादान कहते हैं।

प्रश्न 28. मैथुन किसे कहते हैं?

उत्तर कुशील सेवन को मैथुन कहते हैं।

प्रश्न 29. परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर धन-धान्यादि बाह्य वस्तुएँ तथा आन्तरिक मूर्च्छा, आसक्ति को परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न 30. अभ्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर दूसरे पर झूठा आरोप लगाना अभ्याख्यान कहलाता है।

प्रश्न 31. पैशुन्य किसे कहते हैं?

उत्तर चुगली करना पैशुन्य कहलाता है।

प्रश्न 32. पर परिवाद किसे कहते हैं?

उत्तर दूसरे की निन्दा करना पर परिवाद कहलाता है।

प्रश्न 33. अरति रति किसे कहते हैं?

उत्तर एक अप्रिय पदार्थ पर अप्रीति एवं दूसरे प्रिय पदार्थ पर प्रीति अरति रति कहलाता है।

प्रश्न 34. माया मृषा किसे कहते हैं?

उत्तर माया पूर्वक झूठ का सेवन करना माया मृषा कहलाता है।

प्रश्न 35. मिथ्यादर्शन शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर शल्य = काँटा। मिथ्यादर्शन जीव को काँटे की तरह पीड़ाकारी होता है, अत: उसे ही मिथ्यादर्शन शल्य कहते हैं।

5. आस्रव द्वार के पाँच भेद :-

i **मिथ्यात्व** ii **अविरति**

iii **प्रमाद** iv **कषाय**

iv **योग**

आस्रव के पाँच भेद :-

i **प्राणातिपात** ii **मृषावाद**

iii **अदत्तादान** iv **मैथुन**

v **परिग्रह**

पंच संवरदारा पण्णत्ता, तंजहा-

सम्मत्तं, विरति, अप्पमादो, अकसायया, अजोगया।

-श्री समवायांग सूत्र, समवाय 5, सूत्र 1 (मजैवि);
समवाय 5, सूत्र 26 (मधुकरजी)

जंबू! एत्तो संवरदाराइं, पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए।

जह भणियाणि भगवया, सव्वदुक्खविमोक्खणट्ठाए।।

पढमं होइ अहिंसा, बिइयं सच्चवयणं ति पण्णत्तं।

दत्तमणुण्णाय संवरो य, बंभचेर-मपरिग्गहत्तं च।।

-श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र, संवर द्वार, सूत्र 103, 104 (मधुकरजी)

पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-

मिच्छत्तं, अविरति, पमाए, कसाए, जोगा।

-श्री समवायांग सूत्र, समवाय 5, सूत्र 1 (मजैवि);
समवाय 5, सूत्र 26 (मधुकरजी)

पंचहिं ठाणेहिं जीवा रतं आदियंति, तंजहा-

पाणातिवातेणं जाव (मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं) परिग्गहेणं।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 5, उद्देशक 2, सूत्र 423 (मजैवि);
स्थान 5, उद्देशक 2, सूत्र 128 (मधुकरजी)

दसविधे असंवरे पन्नत्ते, तंजहा-

सोतिंदितअसंवरे जाव (चक्खिंदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वयअसंवरे, कायअसंवरे, उवकरणअसंवरे) सूचीकुसग्गअसंवरे।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 10, सूत्र 709 (मजैवि);
स्थान 10, सूत्र 11 (मधुकरजी)

असंवर के दस भेद :–

i	**श्रोत्रेन्द्रिय असंवर**	ii	**चक्षुरिन्द्रिय असंवर**
iii	**घ्राणेन्द्रिय असंवर**	iv	**जिह्वेन्द्रिय असंवर**
v	**स्पर्शेन्द्रिय असंवर**	vi	**मन असंवर**
vii	**वचन असंवर**	viii	**काय असंवर**
ix	**उपकरण असंवर**	x	**सूचीकुशाग्र असंवर**

- **मैं आस्रवों से अधिकाधिक दूर हटूँ।**

प्रश्न 36. आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्म आते हैं, उसे आस्रव कहते हैं।

प्रश्न 37. अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी व्रत प्रत्याख्यान को स्वीकार न करना अविरति कहलाता है।

प्रश्न 38. प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मभावों के विस्मरण को प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न 39. प्रमाद व **आलस्य** में क्या अन्तर है?

उत्तर आत्मिक पुरुषार्थ की अरुचि प्रमाद है एवं शारीरिक पुरुषार्थ की अरुचि आलस्य है। जहाँ आलस्य है, वहाँ नियमत: प्रमाद होता है, किन्तु जहाँ प्रमाद है, वहाँ आलस्य होना आवश्यक नहीं है। एक मेहनती मिथ्यादृष्टि कृषक प्रमादी है, क्योंकि वह आत्मसाधना हेतु जागृत नहीं है, किन्तु उसमें आलस्य होना आवश्यक नहीं है।

6. संवर द्वार के पाँच भेद :–

i	**सम्यक्त्व**	ii	**विरति**

दसविधे संवरे पन्नत्ते, तंजहा–
सोतिंदितसंवरे जाव (चक्खिंदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे, फासेंदितसंवरे, मणसंवरे, वइसंवरे, कायसंवरे, उवकरणसंवरे) सूचीकुसग्गसंवरे।

–श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 10, सूत्र 709 (मजैवि);
स्थान 10, सूत्र 10 (मधुकरजी)

iii **अप्रमाद** iv **अकषाय**

v **अयोग**

संवर के पाँच भेद :–

i **अहिंसा** ii **सत्यवचन**

iii **दत्तानुज्ञात** iv **ब्रह्मचर्य**

v **अपरिग्रह**

संवर के दस भेद :–

i **श्रोत्रेन्द्रिय संवर** ii **चक्षुरिन्द्रिय संवर**

iii **घ्राणेन्द्रिय संवर** iv **जिह्वेन्द्रिय संवर**

v **स्पर्शेन्द्रिय संवर** vi **मन संवर**

vii **वचन संवर** viii **काय संवर**

ix **उपकरण संवर** x **सूचीकुशाग्र संवर**

- **मैं उत्कृष्ट संवर रूप धर्म का स्पर्श करूँ।**

प्रश्न 40. संवर किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा में आते हुए शुभ–अशुभ कर्मों को रोकना संवर कहलाता है।

प्रश्न 41. सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यग्दर्शन को सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न 42. विरति किसे कहते हैं?

उत्तर व्रत प्रत्याख्यान करना विरति कहलाता है।

प्रश्न 43. अप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाद नहीं करना अप्रमाद कहलाता है।

प्रश्न 44. अकषाय किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय नहीं करना अकषाय कहलाता है।

प्रश्न 45. अयोग किसे कहते हैं?

उत्तर मन, वचन, काया की प्रवृत्ति नहीं करना अयोग कहलाता है।

प्रश्न 46. दत्तानुज्ञात किसे कहते हैं?

उत्तर दिये हुए अथवा अनुमति दिये हुए पदार्थ को ही लेना दत्तानुज्ञात कहलाता है।

प्रश्न 47. ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा में रमण करना अथवा कुशील सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

प्रश्न 48. श्रोत्रेन्द्रिय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसन्द या नापसन्द शब्दों पर राग-द्वेष नहीं करना श्रोत्रेन्द्रिय संवर कहलाता हैं।

प्रश्न 49. चक्षुरिन्द्रिय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसन्द या नापसन्द रूपों पर राग-द्वेष नहीं करना चक्षुरिन्द्रिय संवर कहलाता है।

प्रश्न 50. घ्राणेन्द्रिय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसन्द या नापसन्द गन्धों पर राग-द्वेष नहीं करना घ्राणेन्द्रिय संवर कहलाता है।

प्रश्न 51. जिह्वेन्द्रिय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसन्द या नापसन्द रसों पर राग-द्वेष नहीं करना जिह्वेन्द्रिय संवर कहलाता है।

प्रश्न 52. स्पर्शेन्द्रिय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसन्द या नापसन्द स्पर्शों पर राग-द्वेष नहीं करना स्पर्शेन्द्रिय संवर कहलाता है।

प्रश्न 53. मन संवर किसे कहते हैं?

उत्तर मन की प्रवृत्ति को रोकना मन संवर कहलाता है।

प्रश्न 54. वचन संवर किसे कहते हैं?

उत्तर वचन की प्रवृत्ति को रोकना वचन संवर कहलाता है।

प्रश्न 55. काय संवर किसे कहते हैं?

उत्तर काय की प्रवृत्ति को रोकना काय संवर कहलाता है।

प्रश्न 56. उपकरण संवर किसे कहते हैं?

उत्तर उपकरण उठाते या रखते समय यतना रखना अर्थात् देखकर या पूंजकर यत्नपूर्वक धीरे से उपकरण उठाना या रखना उपकरण संवर कहलाता है।

प्रश्न 57. सूचीकुशाग्र संवर किसे कहते हैं?

उत्तर सूई या घास के तिनके आदि को भी उठाते या रखते समय यतना रखना अर्थात् देखकर एवं पूंजकर यत्नपूर्वक धीरे से सूई, तिनका आदि को

उठाना या रखना सूचीकुशाग्र संवर कहलाता है।

7. निर्जरा :–

तप से निर्जरा होती है। तप के बारह भेद होते हैं, वे इस प्रकार हैं:–

तप के दो भेद :–

1. बाह्य तप **2. आभ्यन्तर तप**

बाह्य तप के छह भेद :–

i **अनशन** ii **अवमोदरिका (ऊनोदरिका)**

iii **भिक्षाचर्या** iv **रसपरित्याग**

v **कायक्लेश** vi **प्रतिसंलीनता**

आभ्यन्तर तप के छह भेद :–

i **प्रायश्चित्त** ii **विनय**

iii **वैयावृत्य** iv **स्वाध्याय**

v **ध्यान** vi **व्युत्सर्ग**

- **मैं आभ्यंतर तप से संयुक्त बाह्य तप की आराधना करूँ।**

.... भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जई।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 30, गाथा 6 (मजैवि, मधुकरजी)

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरऽब्भंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो।।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 30, गाथा 7 (मजैवि, मधुकरजी)

अणसणमूणोयरिया भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ।।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 30, गाथा 8 (मजैवि, मधुकरजी)

पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भन्तरो तवो।।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 30, गाथा 30 (मजैवि, मधुकरजी)

प्रश्न 58. निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आंशिक रूप से अलग होना निर्जरा है।

प्रश्न 59. अनशन किसे कहते हैं?

उत्तर उपवास आदि करके आहार त्याग करना अनशन कहलाता है।

प्रश्न 60. अवमोदरिका (ऊनोदरिका) किसे कहते हैं?

उत्तर भूख से कम खाना अवमोदरिका (ऊनोदरिका) कहलाता है।

प्रश्न 61. भिक्षाचर्या किसे कहते हैं?

उत्तर साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मांगना भिक्षाचर्या कहलाता है।

प्रश्न 62. रसपरित्याग किसे कहते हैं?

उत्तर विगयादि का त्याग करना रसपरित्याग कहलाता है।

प्रश्न 63. कायक्लेश किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर को कष्ट हो ऐसे कार्य करना कायक्लेश कहलाता है।

प्रश्न 64. प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रिय आदि को वश में करना प्रतिसंलीनता कहलाता है।

प्रश्न 65. प्रायश्चित किसे कहते हैं?

उत्तर लगे हुए दोष का शुद्धिकरण करना प्रायश्चित कहलाता है।

प्रश्न 66. विनय किसे कहते हैं?

उत्तर गुरुजनों के प्रति विनम्र वृत्ति-प्रवृत्ति को विनय कहते हैं।

प्रश्न 67. वैयावृत्य किसे कहते हैं?

उत्तर सेवा करना वैयावृत्य कहलाता है।

प्रश्न 68. स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जिनवाणी पढ़ना-पढ़ाना स्वाध्याय कहलाता है।

प्रश्न 69. ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर शुभाशुभ विषय में चित को एकाग्र करना ध्यान कहलाता है।

प्रश्न 70. व्युत्सर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर काया के व्यापार आदि का त्याग करना व्युत्सर्ग कहलाता है।

8. **बन्ध के चार भेद :-**

i **प्रकृति बन्ध** ii **स्थिति बन्ध**

iii **अनुभाव बन्ध** iv **प्रदेश बन्ध**

- **मैं कर्मबन्ध को शिथिल करता जाऊँ।**

प्रश्न 71. बंध किसे कहते हैं?

उत्तर सकषायी अथवा अकषायी जीवों के द्वारा योग के निमित्त से कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को आत्मा के साथ एकमेक करना बंध कहलाता है।

प्रश्न 72. प्रकृति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर प्रकृति = स्वभाव (Nature)। जीव गृह्यमाण कार्मण वर्गणा के पुद्गलों में जो विभिन्न प्रकार का स्वभाव उत्पन्न करता है, उसे प्रकृति बंध कहते हैं।

प्रश्न 73. स्थिति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर स्थिति = काल मर्यादा (Duration)। जीव गृह्यमाण कार्मण वर्गणा के पुद्गलों में जो स्वयं के साथ रहने की काल मर्यादा का निर्धारण करता है, उसे स्थिति बंध कहते हैं।

प्रश्न 74. अनुभाव बंध किसे कहते हैं?

उत्तर अनुभाव = शक्ति (Intensity)। जीव गृह्यमाण कार्मण वर्गणा के पुद्गलों में जो फल देने की विभिन्न प्रकार की न्यूनाधिक शक्ति उत्पन्न करता है, उसे अनुभाव बंध कहते हैं। इसे अनुभाग बंध अथवा रस बंध भी कहते हैं।

प्रश्न 75. प्रदेश बंध किसे कहते हैं?

उत्तर जीव गृह्यमाण कार्मण वर्गणा के पुद्गलों का जो स्वयं के साथ बंध करता है, उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

चउव्विधे बंधे पन्नत्ते, तंजहा-
पगतिबंधे, ठितीबंधे, अणुभावबंधे, पदेसबंधे।

-श्री स्थानांग सूत्र, स्थान 4, उद्देशक 2, सूत्र 296 (मजैवि);
स्थान 4, उद्देशक 2, सूत्र 290 (मधुकरजी)

9. **मोक्ष – मोक्षमार्ग :–**

i **ज्ञान** ii **दर्शन**

iii **चारित्र** iv **तप**

इन चारों की समवेत आराधना से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है।

- **मैं परमसुख रूप मोक्ष को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करूँ।**

प्रश्न 76. क्या किसी भी प्रकार के ज्ञान, दर्शन, आचरण एवं तप से मोक्ष प्राप्त हो सकता है?

उत्तर नहीं, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र एवं सम्यक् तप से ही मोक्ष प्राप्त होता है। यहाँ सूत्र में बताए गए ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप का तात्पर्य सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र एवं सम्यक् तप से ही है।

प्रश्न 77. **मोक्ष** किसे कहते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से अलग होना 'मोक्ष' कहलाता है।

प्रश्न 78. **सम्यक् दर्शन** किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव–अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर संपूर्ण श्रद्धा होना सम्यक् दर्शन कहलाता है। सम्यक् दर्शन से युक्त जीव को सम्यक्दृष्टि कहते हैं।

प्रश्न 79. **सम्यक् ज्ञान** किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव–अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप की जानकारी सम्यक् ज्ञान है।

प्रश्न 80. **सम्यक् चारित्र** किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यक् दर्शन पूर्वक सम्यक् ज्ञान के अनुसार सम्यक् आचरण करना सम्यक् चारित्र है।

प्रश्न 81. **सम्यक् तप** किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना सम्यक् तप है।

सेवं भंते! सेवं भंते!

नोट :– परीक्षा में प्रमाण नहीं पूछे जायेंगे।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा। एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं।।

–श्री उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 28, गाथा 2 (मजैवि, मधुकरजी)

12 चक्रवर्ती

चक्रवर्ती उन्हें कहते हैं जो सम्पूर्ण छः खण्ड पृथ्वी को जीतकर राज्य करे और चौदह रत्न तथा नवनिधि के स्वामी हों। उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. भरतजी	2. सगरजी	3. मधवाजी
4. सनत्कुमारजी	5. शांतिनाथजी	6. कुन्थुनाथजी
7. अरनाथजी	8. सुभूमजी	9. महापद्मजी
10. हरिषेणजी	11. जयसेनजी	12. ब्रह्मदत्तजी

पांचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती ही सोलहवें, सतरहवें और अट्ठारहवें तीर्थंकर हुए हैं।

नव बलदेव, नव वासुदेव और नव प्रतिवासुदेव

बलदेव एवं वासुदेव दोनों भाई होते हैं। वासुदेव, प्रतिवासुदेव को मारकर तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी बनते हैं। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव भी मुनि बन जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

9 बलदेव के नाम

1. अचलजी	2. विजयजी	3. भद्रजी
4. सुप्रभजी	5. सुदर्शनजी	6. आनन्दजी
7. नन्दनजी	8. रामचन्द्रजी	9. बलभद्रजी

9 वासुदेव के नाम

1. त्रिपृष्टजी	2. द्विपृष्टजी	3. स्वयंभूजी
4. पुरुषोत्तमजी	5. पुरुषसिंहजी	6. पुरुषपुण्डरीकजी
7. दत्तजी	8. लक्ष्मणजी	9. कृष्णजी

9 प्रतिवासुदेव के नाम

1. अश्वग्रीवजी	2. तारकजी	3. मेरकजी
4. मधुकीटजी	5. निष्कुंभजी	6. बलिजी
7. प्रहलादजी	8. रावणजी	9. जरासंधजी

-----| -----

छह काय का थोकड़ा

श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र के आधार से छह काय का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं जिसके द्वार हैं :-

1. नाम द्वार, 2. गोत्र द्वार, 3. संठाण द्वार,
4. कुल कोड़ी द्वार, 5. अल्प बहुत्व द्वार।*

नाम द्वार

1. इन्द्र स्थावरकाय 2. ब्रह्म स्थावरकाय
3. शिल्प स्थावरकाय 4. सम्मति स्थावरकाय
5. प्राजापत्य स्थावरकाय 6. जंगम काय

गोत्र द्वार

1. पृथ्वीकायिक 2. अप्कायिक 3. तेजस्कायिक
4. वायुकायिक 5. वनस्पतिकायिक 6. त्रसकायिक

संठाण द्वार

1. पृथ्वीकायिक का संठाण चन्द्र, मसूर के समान।
2. अप्कायिक का संठाण पानी के बुलबुले के समान।
3. तेजस्कायिक का संठाण सुई के भारे के समान।
4. वायुकायिक का संठाण ध्वजा-पताका के समान।

5-6. वनस्पतिकायिक व त्रसकायिक का संठाण अनेक प्रकार का।

कुल कोड़ी द्वार

कुल कोड़ी-जीवों के अनेक प्रकार

पृथ्वीकायिक की - 12 लाख,
अप्कायिक की - 7 लाख,
तेजस्कायिक की - 3 लाख,
वायुकायिक की - 7 लाख,
वनस्पतिकायिक की - 28 लाख,

* वर्ण द्वार, स्वभाव द्वार, जन्म-मरण द्वार - संबंधी वर्णन आगम में प्राप्त नहीं होता है।

द्वीन्द्रिय की – 7 लाख,
त्रीन्द्रिय की – 8 लाख,
चतुरिन्द्रिय की – 9 लाख,
जलचर की – 12½ लाख,
थलचर की – 10 लाख,
खेचर की – 12 लाख,
उरपरिसर्प की – 10 लाख,
भुजपरिसर्प की – 9 लाख,
नैरयिक की – 25 लाख,
देवता की – 26 लाख,
मनुष्यों की – 12 लाख,
कुल कोड़ी एक करोड़ साढ़े सत्तानवे लाख।

अल्प-बहुत्व द्वार

सबसे कम त्रसकायिक,
इससे तेजस्कायिक असंख्येय गुणा,
इससे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक,
इससे अप्कायिक विशेषाधिक,
इससे वायुकायिक विशेषाधिक,
इससे सिद्ध भगवन अनन्त गुणा,
इससे वनस्पतिकायिक अनंतगुणा।

-----| -----

कथा विभाग

1. भगवान पार्श्वनाथ

जन्म- इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गंगा महानदी के निकट वाराणसी नामक भव्य नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकु वंशीय महाराजा अश्वसेन का राज्य था। वे महाप्रतापी सौभाग्यशाली और धर्मपरायण थे। वामादेवी उनकी पटरानी थी। वह सुन्दर, सुशील और उत्तम गुणों की स्वामिनी थी। पति की वह प्राणवल्लभा थी। नम्रता, सौजन्यता और पवित्रता की वह प्रतिमा थी। सुवर्णबाहु का जीव प्राणत स्वर्ग से च्यव कर चैत्र-कृष्णा-चौथ की अर्द्धरात्रि को विशाखा-नक्षत्र में महारानी वामादेवी की कुक्षी में उत्पन्न हुआ। रानी वामादेवी ने तीर्थंकर के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा व महारानी के हर्ष का पार नहीं रहा। स्वप्न पाठकों से स्वप्न फल पूछा। तीर्थंकर जैसे त्रिलोकपूज्य होने वाले महान् आत्मा के आगमन की प्रतीति से वे परम प्रसन्न हुए। पौष कृष्णा दसमी की रात्रि को विशाखा नक्षत्र में पुत्र का जन्म हुआ। नीलोत्पल वर्ण और सर्प के चिह्न वाला वह पुत्र अत्यन्त शोभनीय था। छप्पन दिशाकुमारियों ने सुतिका कर्म किया। देव-देवियों और इन्द्र-इन्द्राणियों ने जन्मोत्सव मनाया। महाराज अश्वसेनजी ने भी बड़े हर्ष के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब पुत्र गर्भ में था, तब रात के अंधकार में महारानी ने पति के पार्श्व (बगल में) में होकर जाते हुए एक सर्प को देखा था। इस स्वप्न को गर्भ का प्रभाव मान कर माता-पिता ने पुत्र का पार्श्व नाम दिया। कुमार दूज के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। यौवनवय प्राप्त होने पर वे भव्य अति आकर्षक और नौ हाथ प्रमाण ऊँचे थे। उनके अलौकिक रूप को देखकर स्त्रियाँ सोचतीं- वह स्त्री परम सौभाग्यवती होगी जिसके पति ये राजकुमार होंगे।

अद्भुत पराक्रम एवं विवाह- कन्नौज (कुशस्थल) नामक नगर में नरवर्मा नामक राजा राज्य करते थे। उनका धर्म के प्रति अनन्य अनुराग था। उन्होंने अपने प्रतापी पुत्र प्रसेनजित को राज्यभार सौंप कर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। राजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की पुत्री थी। वह रूप एवं लावण्य में देवांगना से भी अधिक सुन्दर थी। उसके रूप पर अनेक राजा एवं राजकुमार आसक्त थे। राजकुमारी प्रभावती ने किन्नरियों द्वारा

पार्श्वकुमार के गुण, रूप, सौन्दर्य एवं बल पराक्रम का वृत्तान्त सुना तभी से वह पार्श्वकुमार के प्रति अनुरक्त रहने लगी। कलिंग आदि देशों का अधिपति दुर्दान्त यवनराज ने राजा प्रसेनजित से प्रभावती की मांग की किन्तु माता-पिता ने पुत्री की भावना का आदर करते हुए, यवनराज की मांग को ठुकरा दिया जिससे क्रोधित होकर उसने कलिंग राज्य को घेर लिया तथा धमकी दी कि 'युद्ध करो या प्रभावती को मुझे दो।' इन परिस्थितियों में राजा प्रसेनजित ने एक दूत राजा अश्वसेन के पास भेजा। दूत ने आद्योपांत वृतान्त सुनाते हुए सहायता की मांग की। राजा अश्वसेन बोले- इस दुष्ट यवनराज का इतना दु:साहस! राजा प्रसेनजित को किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिये। मैं स्वयं दुष्ट यवन से कुशस्थल नगर की रक्षा करुँगा। महाराज के आदेश में रणभेरी बजी, सेना एकत्र होने लगी। पार्श्वकुमार रणघोष सुनकर तत्काल राज्यसभा में उपस्थित हुए तथा शीघ्रतापूर्वक घटनाक्रम जान लिया एवं पिताजी से निवेदन कर यवनराज को हराने रणभूमि में जाने की आज्ञा प्राप्त की। युवराज ने शुभ मुहूर्त्त में गजारूढ़ होकर कुशस्थल की ओर प्रस्थान किया। देवाधिपति शकेन्द्र ने तीर्थंकर के युद्धार्थ प्रयाण को जानकर उनके लिये अपने सारथी को दिव्य अस्त्रों तथा रथ के साथ प्रभु की सेवा में भेजा। पार्श्वकुमार हाथी से उतरकर दिव्यरथ पर आरूढ़ हुये तथा कुशस्थल के निकट उद्यान में देव निर्मित महल में ठहरे। यवनराज को दूत भेजकर सन्देश दिया-महाराजा अश्वसेन के पुत्र पार्श्वकुमार ने कुशस्थल से आक्रमण हटाने के लिये सूचित किया है। यवनराज तुम्हारा हित इसी में है कि तुम युद्ध का दु:साहस मत करो।

राजदूत का सन्देश सुनकर यवनराज क्रोधित होते हुए बोला-मैं पार्श्वकुमार से डरने वाला नहीं, अगर पिता-पुत्र दोनों अपने समस्त साथियों को लेकर आ जाएं तो भी मुझसे नहीं जीत सकते। तुम्हारे राजकुमार से जाकर कह दो अगर जीवित रहना चाहते हैं तो शीघ्र यहाँ से प्रस्थान कर जाएं।

यवनराज के धृष्टता पूर्ण शब्द राजदूत सहन नहीं कर सका और क्रोधित स्वर में बोला- हे यवनराज, तू मेरे स्वामी को नहीं जानता। वे अनन्त बली हैं, वे देवेन्द्र के लिए भी पूज्य हैं। उनके सामने संसार की कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती। देवेन्द्र ने अपना रथिक शस्त्र और रथ भेजे हैं। उनकी आप पर कृपा है जो आपको जीवित रहने का सुयोग प्रदान कर रहे हैं।

दूत के वचन को सुनकर यवन सैनिक भड़क उठे और शस्त्र उठाकर राजदूत पर आक्रमण करने हेतु आगे बढ़े। तभी यवनराज का एक वृद्ध मंत्री उठा और उन सभी को शान्त किया तथा राजदूत से क्षमायाचना तथा संतुष्ट कर विदा किया। इसके बाद वृद्ध मंत्री ने यवनराज के सम्मुख पार्श्वकुमार की महानता का उल्लेख किया तथा तीर्थंकर होने का ज्ञान कराया। यवनराज वृद्ध मंत्री की सलाह को मानकर मंत्रियों और अधिकारियों सहित पार्श्वकुमार के स्कन्धावार में पहुँचा। कुमार का दिव्य रथ, महासेना, पार्श्वकुमार का लौकिक प्रभा युक्त भव्य स्वरूप देखकर विस्मित हो गया और सहज ही उसने युवराज को प्रणाम किया। यवनराज ने विनम्रता पूर्वक अपने अपराध के लिए पार्श्वकुमार से क्षमा मांगी और अलौकिक दर्शन कर कृतार्थ हो गया और अपना राज्य समर्पित कर दिया। पार्श्वकुमार ने यवनराज को उचित नीति शिक्षा देकर आत्म-कल्याण का संदेश दिया।

प्रसेनजित नरेश पार्श्वकुमार के आगमन एवं विपत्ति टलने से परम प्रसन्न हुए। नरेश सपरिवार राजकुमारी प्रभावती एवं अधिकारी सहित राजकुमार का अभिनन्दन करने तथा पुत्री को अर्पण करने आए। किन्तु पार्श्वकुमार धीर गंभीर वाणी में बोले - राजन् मैं पिताश्री की आज्ञा से केवल आपकी सहायता के लिए आया हूँ, विवाह करने नहीं। अतएव आप यह आग्रह नहीं करें। तब राजा प्रसेनजित अपनी पुत्री, परिजन सहित पार्श्वकुमार के साथ वाराणसी पहुँचे। विजयी युवराज का जनता ने भव्य स्वागत किया। प्रसेनजित ने अत्यन्त आभार मानते हुए महाराजा अश्वसेन को अपना प्रयोजन निवेदन किया।

कुमार माता-पिता तथा प्रसेनजित राजा का आग्रह टाल नहीं सके। कुछ भोग्य कर्म भी शेष थे। उन्होने प्रभावती के साथ विवाह किया तथा अनासक्त जीवन व्यतीत करने लगे।

कमठ से वाद और नाग का उद्धार- एक दिन पार्श्वकुमार भवन के झरोखे से नगर की शोभा देख रहे थे। उन्होंने देखा नर-नारियों के झुण्ड हाथों में पत्र-पुष्प-फलादि युक्त चंगेरी लेकर नगर के बाहर जा रहे हैं, उन्होंने सेवक से पूछा, क्या कोई उत्सव का दिन है जो नागरिकजन नगरी के बाहर जा रहे हैं? सेवक ने कहा- 'कमठ' नाम के तपस्वी आये हुए हैं। वे पंचाग्नि तप करते हैं। नागरिकजन उन महात्मा की पूजा-वन्दना करने जा रहे हैं।

राजकुमार भी सपरिवार तापस को देखने चले। उन्होंने देखा तापस अपने चारों ओर अग्नि-कुण्ड प्रज्वलित करके तप रहा है और ऊपर से सूर्य के ताप को भी सहन कर रहा है। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से तापस की क्रिया और उससे होने वाले अनर्थ का अवलोकन किया। उन्होंने जाना कि अग्नि कुण्ड में जल रहे काष्ठ के मध्य एक नाग युगल झुलस रहा है। भगवान के मन में दया का वेग उमड़ आया। उन्होंने कहा- अहो! कितना अज्ञान है? वह धर्म ही क्या और वह तप ही किस काम का जिसमें दया का स्थान ही नहीं रहे। जिस तप में दया का स्थान नहीं, वह तप सम्यग् तप नहीं हो सकता। हिंसा युक्त क्रिया से साधक का आत्महित नहीं हो सकता। दया रहित धर्म व्यर्थ है। पशु के समान अज्ञान कष्ट सहने से काया को क्लेश हो सकता है। ऐसा काय क्लेश कितना ही सहन किया जाए परन्तु जब तक वास्तविक धर्मतत्त्व को हृदय में स्थान नहीं मिलता, तब तक ऐसे निर्दय अनुष्ठान से आत्महित नहीं हो सकता।

राजकुमार तुम्हारा काम क्रीड़ा करने का है। हाथी-घोड़े पर सवार होकर मनोविनोद करना तुम जानते हो। धर्म का ज्ञान तुम्हें नहीं हो सकता। धर्मतत्त्व को समझने, समझाने का काम हम धर्मगुरुओं का है, तुम्हारा नहीं। हमारे काम में हस्तक्षेप मत करो। यदि तुम्हें मेरी तपस्या में कोई पाप या हिंसा दिखाई देती हो तो बताओ, अन्यथा अपने रास्ते लगो- अपने अधिकार एवं प्रभाव में अचानक विघ्न उत्पन्न हुआ देखकर तपस्वी बोला।

कुमार ने अनुचर को आदेश दिया- इस अग्निकुण्ड का वह काठ बाहर निकालो और उसे सावधानी से चीरो। सेवक ने तत्काल आज्ञा का पालन किया। काठ को चीरते ही उसमें से जलता हुआ एक नाग युगल निकला। पीड़ा से तड़फते हुए नाग को नमस्कार मंत्र सुनाया और पाप का प्रत्याख्यान करवाया। प्रभु के प्रभाव से नमस्कार मंत्र सुनते ही नाग की आत्मा में समाधिभाव उत्पन्न हुआ। वह आर्त्त-रौद्र ध्यान से बच गया और धर्म ध्यान युक्त आयुष्य पूर्ण करके भवनपति के नागकुमार जाति के इन्द्र 'धरणेन्द्र' पने उत्पन्न हुआ।

जलते हुए काठ में से सर्प निकले और उसे धर्म का अवलंबन देते देखकर उपस्थित जनता की श्रद्धा तापस से हट गई और जनता अपने प्रिय राजकुमार की जय-जयकार करने लगी। पार्श्वकुमार वहाँ से लौटकर स्वस्थान

आए।

तपस्वीराज कमठजी का मान भंग हो गया। वह आवेश में आकर अति उग्र तप करने लगा। वह मिथ्यात्व युक्त तप करता हुआ मरकर भवनवासी देवों की मेघ कुमार निकाय में 'मेघमाली' नाम का देव हुआ।

पार्श्वनाथ का संसार त्याग– भाग्योदय से कर्मफल क्षीण होने पर श्री पार्श्वनाथजी के मन में संसार के प्रति विरक्ति अधिक बढ़ी। भगवान ने वर्षीदान दिया। तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों ने अपने आचार के अनुसार भगवान के निकट आकर प्रार्थना की–

''भगवन्! धर्म-तीर्थ प्रवर्तन करें। भव्य जीवों का संसार से उद्धार करने का समय आ रहा है। अब प्रव्रजित होने की तैयारी करें प्रभु!''

लोकान्तिक देव अपने आचार के अनुसार भगवान से निवेदन करके लौट गये। पौष-कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में तेले के तप से, तीन सौ पुरुषों के साथ प्रभु ने देवेन्द्रों, नरेन्द्रों और विशाल देव-देवियों और नर-नारियों की उपस्थिति में निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्वीकार की। प्रव्रजित होते ही भगवान को मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न हो गया। दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन आश्रमपद उद्यान से विहार करके भगवान कोपकटक नामक गांव में पधारे और धन्य नामक गृहस्थ के यहाँ परमान्न से तेले का पारणा किया। देवों ने वहाँ पंचदिव्य की वर्षा की और धन्य-धन्य कह कर दान की महिमा की। भगवान वहाँ से विहार कर गए।

कमठ के जीव मेघमाली का घोर उपसर्ग

भगवान साधनाकाल में विचरते हुए एक वन में पधारे और किसी तापस के आश्रम के निकट एक कुएँ पर वट वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े रहे। उस समय कमठ तापस के जीव मेघमाली देव ने अपने पूर्वभव के शत्रु पार्श्वकुमार को ध्यानस्थ देखा। वह क्रुद्ध हो गया। पूर्वभवों की वैर-परम्परा पुनः भड़की। वह निर्ग्रन्थ महात्मा के लिए उपद्रव करने पर तत्पर हुआ और भगवान के समीप आया। सर्वप्रथम उसने विकराल केसरी-सिंहों की विकुर्वणा की जो अपनी भयंकर गर्जना, पूँछ से भूमिस्फोट और रक्तनेत्रों से चिनगारियाँ छोड़ते हुए चारों ओर से एक साथ टूट पड़ते हुए दिखाई दिए परन्तु प्रभु तो अपनी ध्यान अवस्था में अडिग, पूर्णतया शान्त और निर्भीक रहे। मेघमाली की यह माया व्यर्थ गई। सिंहों का वह समूह पलायन कर गया।

अपना प्रथम वार व्यर्थ होने के बाद मेघमाली ने दूसरा वार किया। उसने मदोन्मत्त गजसेना बनाई, जो सूँड उठाए चिंघाड़ती हुई चारों ओर से प्रभु पर आक्रमण करने के लिए आ रही थी। परन्तु प्रभु तो पर्वत के समान अडोल शान्त और निर्विकार खड़े रहे। वह गजसेना भी निष्फलता लिये हुए अन्तर्ध्यान हो गई। इसके बाद तीसरा आक्रमण भालुओं का झुण्ड बनाकर किया गया। चौथा भयंकर चीतों के झुण्ड से, पाँचवाँ बिच्छुओं से, छठा भयंकर सर्पों से और सातवाँ विकराल बेतालों के भयंकर रूपों द्वारा उपद्रव करवाया परन्तु वे सभी उपद्रव निष्फल रहे। प्रभु का अटूट धैर्य एवं शान्त समाधि वे नहीं तोड़ सके।

अपने सभी प्रहार निष्फल होते देखकर वह मेघमाली देव बहुत क्रोधित हुआ। अब वह महाप्रलयकारी घनघोर वर्षा करने लगा। भयंकर मेघगर्जना, कड़कती हुई बिजलियाँ और मूसलाधार वर्षा से सभी दिशाएँ व्याप्त हो गईं। घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। तीक्ष्ण भाला बरछी और कुदाल जैसा दु:खदायक असह्य प्रहार उस मेघ की धाराओं का था। इस प्राणहारक वर्षा से पशु-पक्षी घायल होकर गिरने लगे। सिंह-व्याघ्र, महिष और हाथी जैसे बलवान पशु भी उस जल धारा के प्रहार को सहन नहीं कर सके और इधर-उधर भाग-दौड़ कर अपना बचाव करने की निष्फल चेष्टा करने लगे। पशु-पक्षी उस जल प्रवाह में बहने लगे। उनकी अर्राहट एवं चीत्कार से सारे वातावरण में विभीषिका छा गई। वृक्ष उखड़ कर गिरने लगे।

धरणेन्द्र का आगमन : उपद्रव मिटा- भगवान पार्श्वनाथ तो सर्वथा निर्भीक, अडिग और शान्त ध्यानस्थ खड़े थे। अंशमात्र भी भय, क्षोभ या चंचलता नहीं। भूमि पर पानी बढ़ते हुए भगवान के घुटने तक आया, कुछ देर बाद जांघ तक, फिर कमर, छाती और गले तथा और बढ़ते-बढ़ते नासिका के अग्रभाग तक पहुँच गया। किन्तु प्रभु की अडिगता, दृढ़ता एवं ध्यान में कोई कमी नहीं हुई। प्रभु पर हुए इस भयंकर उपसर्ग से धरणेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। उसने अपने अवधिज्ञान से यह दृश्य देखा। उसे कमठ तापस वाली सारी घटना, अपना सर्प का भव और प्रभु का उपकार स्मरण हो आया। वह अपने उपकारी की पापी मेघमाली के उपद्रव से रक्षा करने के लिये, अपनी देवांगनाओं के साथ भगवान के निकट आया। इन्द्र ने भगवान को नमस्कार किया और वैक्रिय से एक लम्बी नाल वाले कमल की

रचना करके प्रभु के चरणों के नीचे कमल रख कर ऊपर उठा लिया। फिर अपने सप्त फण से प्रभु के शरीर को छत्र के समान आच्छादित कर दिया। धरणेन्द्र ने भगवान को इस घोर परीषह से मुक्त किया। धरणेन्द्र प्रभु का भक्त-सेवक था और मेघमाली घोर शत्रु था परन्तु भगवान के मन में तो दोनों समान थे। न धरणेन्द्र पर राग हुआ और न मेघमाली पर द्वेष।

जब मेघमाली का उपद्रव नहीं रूका, तो धरणेन्द्र ने चुनौतीपूर्वक ललकारते हुए कहा :-

''अरे अधम! तुझे कुछ भान भी है? ओ अज्ञानी! इस घोर पाप से तू अपना ही विनाश कर रहा है। तेरी बुद्धि इतनी कुटिल क्यों हो गई है? इन विश्वपूज्य महात्मा का अहित करके तू किस सुख की चाहना कर रहा है? मैं इन महान् दयालु भगवान का शिष्य हूँ। अब मैं तेरी अधमता सहन नहीं कर सकूँगा। मैं समझ गया। तू इन महात्मा से अपने पूर्वभव के वैर का बदला ले रहा है। अरे मूर्ख! इन्होंने तो अनुकम्पा वश होकर सर्प को (मुझे) बचाया था और तेरा अज्ञान दूर करके सन्मार्ग पर लाने के लिये हितोपदेश दिया था, परन्तु तु कुपात्र था। तेरी कषायाग्नि भभकी और अब क्रूर बन कर तू उपद्रव कर रहा है। हे मेघमाली! रोक अपनी क्रूरता को, अन्यथा अपनी अधमता का फल भोगने के लिए तैयार हो जा।''

धरणेन्द्र की गर्जना सुनकर मेघमाली ने नीचे देखा, नागेन्द्र को देखते ही उसे आश्चर्य के साथ भय हुआ। उसने देखा कि जिस संत को मैं अपना शत्रु समझकर उपद्रव कर रहा हूँ, उस महात्मा की सेवा में धरणेन्द्र स्वयं उपस्थित हैं। मेरी शक्ति ही कितनी है, जो मैं धरणेन्द्र की अवज्ञा करूँ और यह महात्मा कोई साधारण मनुष्य नहीं है। साधारण मनुष्य की सेवा में धरणेन्द्र नहीं आते। ये महात्मा किसी महाशक्ति के धारक अलौकिक विभूति हैं। मेरे द्वारा किये हुए भयानकतम उपद्रवों ने इन महापुरुष को किंचित भी विचलित नहीं किया। यह महात्मा तो अनन्त शक्ति के भण्डार लगते हैं। यदि क्रूर होकर इन्होंने मेरी ओर देख भी लिया होता तो मेरा अस्तित्त्व ही नहीं रहता।

''हाँ, मैं अज्ञानी ही हूँ, मैंने महापाप किया है, मैं इस परम पूज्य महात्मा की शरण में जाऊँ और क्षमा माँगू, इसी में मेरा हित है।''

अपनी माया को समेटकर वह प्रभु के समीप आया और नमस्कार

करके बोला- ''भगवन्! मैं पापी हूँ। मैंने आपकी हित शिक्षा को नहीं समझा। मुझ पापात्मा पर आपकी अमृतमय वाणी का विपरीत परिणमन हुआ और मैं अपने वैर का बदला लेने के लिए महाक्रूर बन गया। प्रभु आप तो पवित्रात्मा हैं। आपके हृदय में क्रोध का लेस भी नहीं है। हे क्षमा के सागर! मुझ अधम को क्षमा कर दीजिए। वास्तव में मैं न तो मुँह दिखाने योग्य हूँ, न क्षमा का पात्र हूँ। परन्तु प्रभो! मैं आपकी शरण आया हूँ। आपको शरणागत पर कृपा करनी होगी।

इस प्रकार बार-बार क्षमा मांगते हुए मेघमाली ने प्रभु को वन्दना की और धरणेन्द्र से क्षमायाचना कर स्व-स्थान चला गया। उपसर्ग मिटने पर धरणेन्द्र भी प्रभु को वन्दना करके स्व-स्थान चला गया।

प्रभु वहाँ से विहार करके वाराणसी आश्रम पद उद्यान में पधारे और घातकी वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गए। दीक्षा दिन से तिरयासी (83) रात्रि पूर्ण हो चुकी थी। चैत्र कृष्ण 4, विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग था। घातीकर्म नष्ट होने का समय आ गया था। भगवान ने धर्म-ध्यान से आगे बढ़कर शुक्ल ध्यान में प्रवेश किया और वर्द्धमान परिणामों से घाती कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट कर लिया। देव-देवियों और इन्द्रों ने महोत्सव किया। केवलज्ञान होने के बाद भगवान ने अपनी प्रथम धर्मदेशना दी। चतुर्विध संघ की स्थापना की। 30 वर्ष तक गृहस्थावस्था, 70 वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन कर 100 वर्ष की आयु में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

-----| -----

2. सुलसा श्राविका

परिचय- राजगृह नगर में 'नाग' नामक सारथी रहता था, उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। वह श्राविका थी। भगवान महावीर स्वामी की तीन लाख अट्ठारह हजार श्राविकाओं में उसका नाम पहला था क्योंकि वह सम्यक्त्व में दृढ़ थी तथा उसमें दान की भावना आदि कई विशिष्ट गुण थे।

पुत्र के अभाव में- सुलसा को कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था पर उसने इसका कोई विचार नहीं किया। प्रायः स्त्रियाँ पुत्र न होने पर देवी-देवताओं की शरण लेती हैं। उनकी मनौती करती हैं। मंत्र-तंत्र करवाती हैं पर उसने देवी-देवताओं की शरण या मंत्र-तंत्र करने का मन में भी विचार नहीं किया। उसकी यह दृढ़ता थी कि पुत्र चाहे हो, चाहे ना हो परन्तु अरिहंत देव के अतिरिक्त अन्य किसी देव को मस्तक नहीं झुकाऊँगी। नमस्कार मंत्र के अतिरिक्त दूसरा मंत्र कभी स्मरण नहीं करूँगी।

सुलसा के पति नाग को पुत्र की बहुत अधिक अभिलाषा थी। उसने पुत्र प्राप्ति के लिए अन्य देवी-देवताओं को पूजना आरम्भ किया व मंत्र-तंत्रों का स्मरण चालू किया।

सुलसा-नाग की चर्चा

जब सुलसा को यह जानकारी हुई, तो उसने अपने पति को समझाया-'नाथ! इन देवी-देवताओं की पूजा छोड़ो। मंत्र-तंत्र का स्मरण छोड़ो। हमें एकमात्र अरिहंत देव और नमस्कार मंत्र का ही स्मरण करना चाहिये। अरिहंत व सिद्ध को ही देव मानना चाहिये। अन्य देव-देवियों और मंत्र-तंत्रों पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।'

'नाग' ने कहा-सुलसे! मैं अरिहंत देव और नमस्कार मंत्र पर ही श्रद्धा रखता हूँ। मुझे अन्य देवी-देवताओं और अन्य मंत्रों पर श्रद्धा नहीं है, मैं उन्हें संसार तारक या मोक्ष देने वाला नहीं मानता, पर ये लौकिक देव और लौकिक मंत्र हैं। पुत्र की आशा लौकिक आशा है। मैं मानता हूँ कि ये लौकिक आशा पूर्ण करने में सहायता दे सकते हैं इसलिये मैं इन्हें पूजता हूँ और स्मरण करता हूँ। सुलसा ने कहा- स्वामी! यद्यपि अन्य देवों और मंत्रों पर हमारी श्रद्धा नहीं है, पर उन्हें पूजने और उनके स्मरण करने की प्रवृत्ति तो मिथ्यात्व की ही है। हमें मिथ्यात्व की प्रवृत्ति से बचना ही चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि पूर्व जन्म में शुभ कर्म नहीं किये हैं, तो यह अन्य देव-देवियाँ और मंत्र-तंत्र हमें कुछ भी नहीं दे सकते और न सहायता ही कर सकते हैं।

नाग ने कहा- सुलसे! तुम्हारा कहना सत्य है। हमारे पूर्व जन्म के पुण्य अभी उदय में न आये हों परन्तु भविष्य में उदय की संभावना हो तब तो ये देवता और मंत्र हमारी सहायता समय से पूर्व उदय में लाकर कर सकते हैं। यह सोच कर ही मैं अन्य देवों को नमस्कार करता हूँ, मंत्रों का स्मरण करता हूँ।

सुलसा ने कहा- नाथ! आपका यह कहना सत्य है। परन्तु मैं मिथ्यात्व की प्रवृत्ति अपनाना नहीं चाहती। यदि मान लो कि हमारे अन्तराय का उदय है तो दोनों ओर हमारी हानि ही है। पुत्र की प्राप्ति भी नहीं होगी और मिथ्यात्व प्रवृत्ति का पाप भी लग जाएगा। यदि आपको पुत्र की अभिलाषा है तो आप अन्य स्त्री से लग्न कर लीजिये, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति का सेवन मत कीजिये। जो लोग मुझे बांझ कहते हैं इसका आप कोई भी विचार मत कीजिये। जो सम्यक्त्व पर दृढ़ता का महत्व जानते हैं, वे हमारी निंदा नहीं करेंगे तथा जो सम्यक्त्व दृढ़ता का महत्व नहीं जानते हैं, उनकी बात हमें सुननी ही क्यों चाहिये?

नाग ने कहा- 'सुलसे! मैं तुम्हारा कहना मानकर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति छोड़ देता हूँ पर मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा। मैं पुत्र चाहता हूँ पर तुम्हारी ही कुक्षी से उत्पन्न पुत्र चाहता हूँ।'

सुलसा ने कहा- धन्य है आर्यपुत्र! आपने मिथ्या प्रवृत्ति छोड़ने का अच्छा निश्चय किया। धर्म पर दृढ़ रहने से अशुभ कर्मों का क्षय होता है जिससे अनिष्ट का विनाश होता है और इष्ट की प्राप्ति होती है।

धन्य है सुलसा को, जिसने बांझ रहना स्वीकार किया, अपने ऊपर सौत का आना स्वीकार किया, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति करना स्वीकार नहीं किया। स्वयं ने मिथ्यात्व त्यागा और पति को भी मिथ्यात्व से दूर रखा।

शकेन्द्र द्वारा प्रशंसा- सुलसा की इस दृढ़ता और तत्त्व ज्ञान की प्रशंसा करते हुए पहले देवलोक के 'शक्र' नामक इन्द्र ने देवताओं की भरी सभा में कहा- 'राजगृह नगर के नाग सारथी की पत्नी सुलसा श्राविका धन्य है क्योंकि वह सम्यक्त्व पर दृढ़ है। कोई देव दानव भी उसे सम्यक्त्व से डिगा

नहीं सकता।'

उसकी अरिहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा इतनी दृढ़ है कि वह संसार का सुख छोड़ सकती है, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति कभी नहीं अपनाती। उसे कितनी भी हानि पहुँचे, कितना भी कष्ट पहुँचे, फिर भी श्रद्धा से नहीं डिगती।

देव द्वारा परीक्षा– एक मिथ्यादृष्टि देव को यह बात सहन नहीं हुई। वह सुलसा की परीक्षा के लिए साधु का रूप बनाकर सुलसा के घर पहुँचा। सुलसा ने उसको साधु समझ कर वन्दन, नमस्कार किया एवं कहा– भन्ते! मेरे योग्य सेवा फरमाइये। देव ने कहा– श्राविके! मेरे वृद्ध गुरु के शरीर में भयंकर बीमारी है। उनके उपचार के लिये वैद्यों ने मुझे लक्षपाक तेल बताया है। इसलिये मुझे उस तेल की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे घर प्रासुक (सूझता) हो तो चाहिये। सुलसा ने कहा– भंते! आप कृपा कीजिये, आज का दिन धन्य है। यह कहकर वह लक्षपाक तेल लेने गई। लक्षपाक तेल लाख वस्तुओं से बनता है। उसके बनने में लाखों रुपये खर्च होते हैं। लक्षपाक तेल की उसके घर में तीन शीशियाँ थी। वे जहाँ थी, वहाँ पहुँच कर वह एक शीशी उतारने लगी कि देव माया से शीशी फिसलकर नीचे गिर गई और फूट गई। दूसरी और तीसरी शीशी की भी यही स्थिति हुई। इस प्रकार उसके लाखों रुपये मिट्टी में मिल गये पर उसके मन में खेद नहीं हुआ। उसे यह विचार ही नहीं आया कि ये कैसे साधु हैं जिन्हें दान देते हुए मेरे मूल्यवान पदार्थ नष्ट हो गये, वरन् उसे इस बात का खेद हुआ कि मेरी यह वस्तुएँ संतों के काम नहीं आ सकी। मेरे हाथों से दान नहीं हो सका। संत मेरे यहाँ पधारे परन्तु उन्हें आवश्यक वस्तु नहीं मिल सकी। मैं दानान्तराय कर्म के उदय से औषधि नहीं दे सकी। अब इनके वृद्ध गुरु (संत) की बीमारी कैसे दूर होगी। आह! वे मुनिवर कितने कष्ट पा रहे होंगे। मुझ अभागिन ने ध्यान से वह शीशियाँ नहीं उतारी। ऐसे समय में मुझसे सावधानी क्यों नहीं रही? धिक्कार है मुझे, यह कहते हुए उसका मुँह कुम्हला गया, आँखें डबडबा गईं।

देवता यह सारे दृश्य देख रहा था। अवधि ज्ञान से सुलसा की व्यथा को भी समझ रहा था। उसे प्रत्यक्ष हो गया कि शकेन्द्र जो कह रहे थे, वह सर्वथा सत्य था। सचमुच यह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है। देवता ने सुलसा के

सामने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और कहा- श्राविके! खेद न करो, यह तो मेरी देव माया थी, जो मैंने तुम्हारी सम्यक्त्व की दृढ़ता की परीक्षा के लिये की थी। धन्य हो तुम! इन्द्र भी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।

सुलसे! 'मैं प्रसन्न हुआ। जो तुम्हारी इच्छा हो वही मांगों। मैं उसकी पूर्ति करूँगा।' सुलसा ने कहा- देव! मेरी तो यही इच्छा है कि मेरी सम्यक्त्व पर दृढ़ता बनी रहे, मेरा सम्यक्त्व रत्न सुरक्षित रहे। पर यदि आप कुछ देना चाहते हैं तो मेरे पति को पुत्र की अभिलाषा है, वह पूरी करें।

देवता ने उसे पुत्र उत्पत्ति में सहायक बत्तीस गुट्टिकाएँ दी और समय पड़ने पर 'मुझे स्मरण करना'- यह कहकर वह देवलोक में लौट गया। कालान्तर में उसके अनेक पुत्र हुए।

भगवान द्वारा प्रशंसा- चम्पानगरी की बात है। भगवान महावीर स्वामी वहाँ विराजमान थे। वहाँ अम्बड़ नामक एक श्रावक आया। वह अनेक विद्याओं का जानकार था। उसने भगवान महावीर स्वामी की वाणी सुनकर, उन्हें वन्दना-नमस्कार करके कहा 'भंते! आपका उपदेश सुनकर मेरा जन्म सफल हो गया। अब मैं राजगृह नगरी जा रहा हूँ।'

भगवान ने कहा- 'अम्बड़!' तुम जिस नगरी में रह रहे हो, वहाँ सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है।

अम्बड़ द्वारा परीक्षा : अम्बड़ ने सोचा- भगवान जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य ही है किन्तु मैं परीक्षा करके प्रत्यक्ष देखूँ तो सही कि 'वह सम्यक्त्व में किस प्रकार दृढ़ है।'

राजगृह पहुँच कर विद्या के बल से उसने संन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा- ''आयुष्मति (लम्बे आयुष्य वाली)! मुझे भोजन दो। इससे तुम्हें धर्म होगा, मोक्ष की प्राप्ति होगी।''

सुलसा ने उत्तर दिया- 'संन्यासीजी! अनुकम्पा बुद्धि से मैं प्रत्येक को भोजन दे सकती हूँ आपको भी देती हूँ परन्तु, धर्म और मोक्ष आपको देने से नहीं हो सकता। किन्हें देने से धर्म और मोक्ष होता है? यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।'

यह सुनकर अम्बड़ उसके घर से बिना भिक्षा लिए लौट गया और नगर के बाहर गया। वहाँ उसने आकाश में अधर कमल का आसन वैक्रिय से बनाया और उसके ऊपर बैठकर तपश्चर्या करने का दिखावा करने लगा।

लोग उसे अधर कमल के आसन पर तपश्चर्या करते देख आश्चर्यचकित होने लगे।

कुछ स्त्रियाँ, जो उस अम्बड़ को देखकर लौटती थीं, वे सुलसा के पास अम्बड़ के कमल अधरासन और तपश्चर्या की प्रशंसा करतीं। उसके अतिशय का बखान करतीं और सुलसा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा करतीं, पर वह इन आडम्बरों के चक्कर में नहीं आई।

सैकड़ों-हजारों लोग अम्बड़ के दर्शन के लिए आने लगे। उसकी पूजा-भक्ति होने लगी और पारणे के लिए निमन्त्रण पर निमन्त्रण आने लगे। पर वह सबको निषेध करता रहा।

लोगों ने पूछा - 'योगीराज!' आप पारणे के लिये किसी का भी निमंत्रण स्वीकार नहीं करते, तो क्या हमारा नगर अभागा है? आप जैसे महान् अतिशय वाले तपस्वी, हमारे यहाँ से आहार लिए बिना भूखे ही पधार जाएँगे? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। हमारे गाँव में कोई न कोई तो ऐसा पुण्यशाली होगा, जो आपको पारणा कराकर कृतार्थ बनेगा। आप कृपया उस भाग्यशाली का नाम बतावें, हम अभी उसे सूचित करते हैं।

दिव्य योगी रूपधारी अम्बड़ ने कहा- ''पुरजनो! आपके यहाँ सुलसा नामक नाग पत्नी रहती है। वह यदि अपने यहाँ पारणा करायेगी तो मैं पारणा करूँगा।'' यह सुनकर लोग सुलसा के घर पहुँचे।

सुलसा की धर्मनिष्ठा- सब लोगों ने आकर सुलसा से कहा - 'बधाई है सुलसा! बधाई है। वे अपूर्व योगीराज तुम्हारे यहाँ पारणा करना चाहते हैं। उन्हें पारणा कराओ और भाग्यशाली बनो।' तब उसने अम्बड़ की उस विकुर्वणा को जानकर उत्तर दिया- ''पुरजनो! मैं अरिहंत को ही देव, निर्ग्रन्थ को ही गुरु और केवली प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानती हूँ। मुझे इन जैसे साधुओं पर कोई श्रद्धा नहीं है।''

''सच्चे साधु अपने अतिशय का दिखावा और तप की प्रसिद्धि नहीं करते। 'उस घर पारणा करूँगा' ऐसा नहीं कहते हैं। वे अपनी उपलब्धियों (ऋद्धियों) को गुप्त रखते हैं, तपश्चर्या को प्रकट नहीं करते हैं। बिना सूचना दिए घरों में प्रवेश करते हैं और नाना घरों से गोचरी लेकर संयम यात्रा चलाते हैं। ऐसे मिथ्या साधुओं को पारणा कराने से कोई फायदा नहीं।'' यह उत्तर सुनकर पुरजन बहुत खिन्न हुए। कुछ ने यह उत्तर उस दिव्य रूपधारी

योगीराज को सुनाया। इस उत्तर को सुनकर अम्बड़ को यह प्रत्यक्ष हो गया कि सुलसा सम्यक्त्व में कितनी दृढ़ है? यह आडम्बर और लोकमत से किस प्रकार अप्रभावित रहती है।

अम्बड़ द्वारा प्रशंसा– उसने अपना वेश बदला और सभी लोगों के साथ 'नमस्कार मंत्र' का उच्चारण करते हुए सुलसा नागपत्नी के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने उस समय अम्बड़ को स्वधर्मी समझ कर उठकर उसका सत्कार-सम्मान किया। अम्बड़ ने भी भगवान द्वारा की गई प्रशंसा पुरजनों को सुनाई और अपने द्वारा की गई परीक्षा बताकर सुलसा की स्वयं अम्बड़ ने भी बहुत प्रशंसा की।

लोगों ने भी यह सब देखकर सुलसा की सम्यक्त्व-दृढ़ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

-----| -----

3. क्षमाधनी-खंधक मुनि

जन्म और शिक्षा– श्रावस्ती नगरी में न्याय नीतिवान् 'कनककेतु' नाम का राजा राज्य करता था। उन्हें सर्वगुण सम्पन्न, 'स्कंधक' नामक एक पुत्र रत्न एवं सुनंदा नामक एक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई। योग्य वय में राजकुमारी सुनंदा का विवाह कांची नरेश पुरुषसिंह के साथ हुआ। राजकुमार स्कंधक 72 कलाओं में निपुण बन विवाह योग्य होने पर स्वजनों ने किसी सुन्दर कन्या से स्कंधक का विवाह करना चाहा पर होनी को कुछ और ही मंजूर था।

विरक्ति और दीक्षानुमति– श्रावस्ती नगरी में आचार्य श्री विजयसेन का आगमन हुआ। राजा कनककेतु एवं राजकुमार स्कंधक आचार्य श्री के दर्शन-वंदन हेतु गये। उनके श्री मुख से जिनवाणी श्रवण कर राजकुमार के भीतर पूर्व भव के सुसंस्कार जागृत हुए। संसार को असार जानकर स्वजनों से दीक्षा की आज्ञा मांगते हैं। पहले तो माता-पिता मोहवश आज्ञा नहीं देते हैं किन्तु अंत में पुत्र का दृढ़ वैराग्य देखकर आज्ञा देते हुए कहते हैं– ''हे पुत्र! जिस सिंह वृत्ति से दीक्षा ले रहे हो उसी सिंह-वृत्ति (शूर-वीरता) के

साथ पालन करना'' राजकुमार माता-पिता की आज्ञानुसार उत्कृष्ट संयम का पालन करते हुए ज्ञानार्जन के साथ-साथ घोर तप भी करने लगे। गीतार्थ बन जाने पर गुरु ने उन्हें एकाकी विचरण की आज्ञा दी और वे ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

पिता का ममत्व- इधर माता-पिता को चिंता हुई कि राजकुमार स्कंधक बड़ा सुकुमार व युवा है। अति दुष्कर संयम मार्ग पर यह कैसे चल सकेगा? इसलिए पिता ने मोहवश उनके संरक्षण के लिये अपने पाँच सौ सुभटों-सेवकों को बहुत ही सजगता के साथ गुप्त रूप से साधारण नागरिकों की वेशभूषा में पीछे रहने का आदेश दिया।

बहिन के राज्य में- दीक्षा के दिन से ही कठोर तपस्या करते हुए स्कंधक मुनि ने अपने शरीर को तप की भट्टी में सुखा दिया। जिससे उनका शरीर चमड़ी से ढंका हुआ हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। ऐसे तपोमूर्ति महामुनि विचरण करते हुए अपनी सांसारिक बहन के राज्य में पधारे। साधारण वेश धारी सैनिकों ने समझा कि इस समय मुनिराज अपने बहनोई के राज्य में पधारें हैं अतः शंका जैसी कोई बात नहीं है। ऐसा सोचकर रक्षक निश्चिंत हो अपने कर्त्तव्य से विमुख हो अन्य प्रवृत्तियों में संलग्न हो गए।

इधर महामुनि स्कंधक अनेक उच्च, मध्यम, निम्न कुलों से निर्दोष भिक्षा ग्रहण करते हुए राजमहल के निकट पहुँचे। उस समय महल के गवाक्ष में राजा और रानी मधुर वार्तालाप में संलग्न थे। इतने में महारानी की नजर तप तेज से प्रदीप्त मुनिश्रीजी के शरीर पर पड़ी और विचार करने लगी- अहो! मेरे भ्रातामुनि भी कहीं न कहीं इस भीषण गर्मी में तप्ती धरा पर नंगे पांवों से इसी वेश में भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण कर रहे होंगे।

विचारों की तल्लीनता में रानी मुनि को एकटक दृष्टि से निहारने लगी। तपाराधना से मुनि का शरीर अत्यन्त कृश हो जाने से रानी अपने भ्राता मुनि को पहचान नहीं पाई। कठोर साधुचर्या और स्वयं की आरामदायक स्थिति की तुलना करते हुए महारानी भ्राता मुनि के दुस्सह कष्टों के स्मरण से रोमांचित हो गई और उनकी आँखों से आंसू छलक पड़े।

राजा का संदेह- महारानी के अश्रुओं को देख राजा गंभीर बन गए व कारण जानने के लिए राजा ने पथ की ओर देखा तो उनकी नजर मुनिश्री पर पड़ी। अहो! तो यह बात है। इसके कारण ये आंसू हैं। राजा का मन

संशय ग्रस्त बन गया। रानी के चरित्र में संदेह की आशंका मानकर तत्काल राजा ने निर्णय किया कि इस साधु को ही मरवा दूं। जिससे मेरे और रानी के संबंधों को कोई हानि नहीं पहुँचे।

राजा का आदेश– राजा वहाँ से अपने व्यक्तिगत महल में आया और चाण्डालों को बुलाकर आदेश दिया कि राजमहल के निकट राजपथ से जो भिक्षुक कुछ देर पूर्व निकला है, उसे पकड़कर किसी दूर एकान्त जंगल में या वधशाला में ले जाओ और सिर से पांव तक उसकी खाल उतार लो।

चाण्डाल आश्चर्यचकित थे। वे जानते थे कि ऐसे भिक्षुक जैन मुनि होते हैं और जैन मुनि तो रास्ते की चींटी तक को अपने पैरों के नीचे नहीं आने देते, ऐसे करुणाशील होते हैं, पर क्या करते, वे राजा की आज्ञा से इंकार करने का साहस भी कहाँ से लाते? बेमन से वे चाण्डाल उन मुनिश्री के पास आकर राजाज्ञा की बात बताते हैं। मुनिश्री समझ जाते हैं कि विकट परिषह उपस्थित हो गया है, पर वे अपना धैर्य नहीं खोते, मन को विषम भावों में नहीं आने देते। चुपचाप चाण्डालों के बताए पथ पर चलने लगते हैं। जंगल में एक सुनसान स्थल पर चाण्डाल ठहरते हैं, मुनि भी रूक जाते हैं और ध्यानस्थ हो जाते हैं।

मुनि की क्षमाशीलता– चाण्डाल सुतीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों से मुनि की खाल उतारने लगते हैं; चमड़ी उधेड़ने लगते हैं। असह्य वेदना होती है। मुनिराज अपार धैर्य धारण कर सहज बने रहते हैं कि ''मैं शरीर नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। जो वेदना हो रही है वह मुझे नहीं, शरीर को हो रही है। इन चाण्डालों की और राजा की भी कोई गलती नहीं है। गलती यदि किसी की है तो मेरी। निश्चय ही मैंने अपने किसी पिछले जन्म में कोई महा अशुभ कर्म किया होगा, जिसका फल इस रूप में भोगना पड़ रहा है। शरीर के अधिकांश भाग की चमड़ी उतर चुकी थी और चाण्डाल का कार्य जारी था। उस समय मुनि स्कंधक परिणामों की विशुद्धता से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो गये। केवलज्ञान–केवलदर्शन को प्राप्त कर सब दु:खों से मुक्त हो गए।

भ्राता मुनि की हत्या–सुनन्दा ने जाना– चाण्डाल अपना कार्य समाप्त कर वहाँ से चले गये। उधर रक्त रंजित मुनिवर की मुखवस्त्रिका, रजोहरण को मांस का टुकड़ा समझ एक चील झपट्टा मारकर उसे अपने पंजों में दबोच, आकाश में उड़ने लगी। संयोग से वह रजोहरण, मुखवस्त्रिका उसके

पंजों से छूट गई और ठीक महारानी सुनन्दा के महल में, उन्हीं के समक्ष गिरी। यह यहाँ कैसे? किसी पक्षी ने गिराई है तो किसके खून से भरी हुई है और क्यों?

दासियों से ज्ञात कराती है। दासियां आकर जो कुछ बताती है उससे मुनि के घात का प्रसंग, राजाज्ञा का प्रसंग, चमड़ी उतारने का प्रसंग ज्ञात हो जाता है। तो महाराज ने स्वयं मुनि की हत्या करवाई है। जिज्ञासा बढ़ जाती है, आगे खोज करवाती है, तब महारानी को ज्ञात होता है कि जिस मुनि की हत्या करवाई गई, वह उनका ही भ्राता था। महाराज ने उसे लेकर चारित्रिक संदेह किया जिसका यह परिणाम था।

महाराज का पश्चाताप– महारानी अत्यन्त व्यथित हुई। बड़ा करुण विलाप किया। महाराज को भी जब सारी बातें ज्ञात हुई तो वे भी बहुत पछताये। सोचा– हाय! मैंने कैसा जघन्यतम नृशंसता पूर्ण कुकृत्य कर डाला? अरे! मेरे जैसा पापी, दुष्ट और हत्यारा कौन इस पृथ्वी पर होगा? जिसने एक निरपराधी, शांत, दांत क्षमावीर साधु की हत्या करवा दी। इस पर रानी बोली– हे स्वामी! ऐसा दुष्कृत्य करने से पहले पता तो लगा लेते, क्योंकि न तो मैंने विकारवश मुनिराज पर दृष्टि डाली थी और न ही मुनिराज के मन में किसी प्रकार का पापांश था। इस प्रकार महाराजा को सारी बातें ज्ञात हुई तो वे बहुत पश्चाताप करने इगे।

काचरे छीलने की प्रशंसा का फल–देह की उतारी खाल– एक बार किसी लब्धिधारी, विशिष्ट ज्ञानी मुनि का कांचीपुर आना हुआ तो राजा व रानी गये उनके चरणों में, दर्शन वंदन किया और पूछा 'भगवान् ! मेरे द्वारा मुनि हत्या जैसा जघन्य पाप का कारण क्या था? क्या केवल मन में उत्पन्न संदेह ही था या अन्य कुछ?'

मुनिराज ने बताया– ''आज से एक हजार वर्ष पूर्व स्कंधक राजकुमार, अर्थात् मुनिजी के जीव ने एक काचरे को बहुत ही सावधानी व चतुरता से ऐसा छीला कि उसका छिलका अखण्ड रहा। उस समय उस जीव ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की कि अहा! मैंने कितनी चतुरता के साथ छिलका अखण्डित उतार लिया। उसे गोल–गोल बनाकर बता दूं तो कोई जान नहीं सकता कि यह साबुत काचरा होगा या केवल छिलका है। राजन! काचरे का वह जीव तुम हो। एक हजार वर्ष पूर्व के वैराणुबंध का बदला तुमने इन मुनि

की खाल उतरवाकर लिया है। काचरा (ककड़ी) छिलने वाले जीव ही इस भव में स्कंधककुमार और बाद में स्कंधक मुनि बने। पाप में अति प्रसन्नता अनुभव के कारण निकाचित कर्म बंधन हुए। अतः तुमने उससे पूर्व वैर का बदला इस तरह लिया।''

राजा पुरुषसिंह व रानी सुनंदा दीक्षित- राजा पुरुषसिंह के मन में मुनिराज से पूर्वभव का सारा प्रसंग चिंतन-मनन करते हुए संयम पथ ग्रहण करने की भावना जगी। रानी सुनंदा तो भ्राता मुनि की खाल खिंचवाने के प्रसंग से ही संसार से विरक्त बन चुकी थी। इन दोनों ने दीक्षा अंगीकार कर अपना आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त किया।

राजा कनककेतु व रानी मलयसुन्दरी भी दीक्षित- स्कंधक मुनि के माता-पिता ने संरक्षण हेतु जिन गुप्तचरों को नियुक्त किया था, उन्होंने आकर महाराजा कनककेतु एवं रानी मलयसुन्दरी को यह बता दिया कि किस तरह मुनिवर की खाल उतार ली गई और उन्होंने कैसे अत्यन्त शांत स्वभाव से सहन करते हुए प्राण त्याग दिए।

गुप्तचरों से अपने दीक्षित पुत्र के पूर्ण प्रसंग को जानकर वे दोनों राजा-रानी भी संसार से विरक्त बन दीक्षित हो गये। उन्होंने भी अपना शेष जीवन 'स्व' में रमण करते हुए निजात्मा को भावित करते हुए बिताया एवं समाधिमरण को प्राप्त किया।

-----| -----

काव्य विभाग

1. श्री भक्तामर - स्तोत्र

(रचयिता : आचार्य श्री मानतुंग)

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् - प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्॥1॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत - बुद्धि पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत्त्रितय - चित्त - हरै - रुदारैः।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥2॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित - पाद - पीठ
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल - संस्थित - मिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्?॥3॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र! शशाङ्क - कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर - गुरु - प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ॥4॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान् - मुनीश,
कर्तुं स्तवं - विगत - शक्तिरपि - प्रवृत्तः।
प्रीत्याऽऽत्म - वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥5॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम,
त्वद् - भक्तिरेव मुखरी - कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु॥6॥

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीर - भाजाम्।
आक्रान्त - लोक - मलि - नील - मशेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम्॥7॥

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः॥8॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे - सहस्त्र - किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास - भाञ्जि॥9॥

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म - समं करोति॥10॥

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः,
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति - दुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जल निधे - रसितुं क इच्छेत्॥11॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान - मपरं न हि रूपमस्ति॥12॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोपमानं।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश -कल्पम्?13॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप-
शुभ्रा - गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर - नाथ - मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्?।14॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम्।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिता - चलेन,
किं मन्दराद्रि - शिखरं चलितं कदाचित्? ।15॥

निर्धूम - वर्ति - रप - वर्जित - तैलपुरः,
कृत्स्नं जगत् - त्रय - मिदं प्रकटी - करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस् - त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥16॥

-----| -----

2. आत्मशुद्धि

आत्मशुद्धि हित धर्म ध्यान का, चिन्तन जो नर करता है।
अशुभ कर्म को दूर हटाकर मोक्षमार्ग पग धरता है।।1।।

जग में अकेला आया हूँ और यहाँ से अकेला जाऊँगा।
कर्म शुभाशुभ संग में लेकर, यथास्थान मैं पाऊँगा।।2।।

मेरा मेरा करके फँसता, नहीं कोई जग में तेरा।
देह छोड़कर उड़ेगा पंछी, भिन्न स्थान होगा डेरा ।।3।।

महा विडम्बना है परिजन की, अन्त साथ नहीं जाता है।
निर्भय होकर देखो प्राणी, मरण अकेला पाता है।।4।।

धन्य-धन्य नमिराज ऋषि ने, एकत्व भावना भायी थी।
कंकण से लेकर प्रेरणा, झट मिथिला ठुकराई थी।।5।।

स्वर्गपति ने दस प्रश्नों का, भावपूर्ण उत्तर पाया।
खुश होकर के स्वयं शकेन्द्र ने, ऋषि वर गुण गौरव गाया।।6।।

क्षण भंगुर है तेरी काया, क्षण भंगुर है जग की माया।
खूब खिलाया, खूब पिलाया, फिर भी है नश्वर काया।।7।।

देख-देख तन की सुन्दरता, खुश हो होकर फूल रहा।
लूट गई तेरी रूप सम्पदा, सनत् चक्री को भूल रहा।।8।।

वैभव में मतवाला बनकर, झूम रहा जैसे हस्ती।
रावण जैसे चले गये, फिर तेरी कौन भला हस्ती।।9।।

पुद्गल के ये रूप पराये, जिन्हें तू अपना मान रहा।
ज्ञानी कहते इन्हें छोड़ दे, क्यों तू अपनी तान रहा।।10।।

त्यागी ममता जागी समता, नश्वरता चित्त में लाया।
अनित्य भावना भाकर के ही, भरत चक्री केवल पाया।।11।।

रोग शत्रु जब तन को घेरा, नहीं किसी का दाव लगा।
आत्मिक शांति तब ही पाता, मन में समता भाव जगा॥12॥

स्वयं बांधता स्वयं भोगता, नहीं कोई शरण दाता।
त्राहि-त्राहि करके रोता, स्वयं जगत में दु:ख पाता॥13॥

जन्म जरा मृत्यु के भय से, भयभीत बना पामर प्राणी।
कुकृत्यों को नहीं छोड़ता, पिला जा रहा दु:ख की घाणी॥14॥

तीन खण्ड के स्वामी थे पर, मिला नहीं मरते पानी।
पुरजन परिजन पास न आये, बीती थी जब जिन्दगानी॥15॥

अहो अनाथी मुनि के सिर में, घोर वेदना छाई थी।
रहे ताकते पारिवारिकजन, चैन पलक नहीं पायी थी॥16॥

अरहट माला सम जग लीला, सदा पलटती रहती है।
नहीं जगत में स्थिरवासा, जिन वाणी यूं कहती है॥17॥

अपना-अपना किसे पुकारे, जगजीवन तो है सपना।
छोड़ कल्पना अपने मन की, सत्य नाम प्रभु का जपना॥18॥

जग का सुख शाश्वत नहीं होता, जैसे बादल की छाया।
क्यों भरमाया भौतिक सुख में, बिजली सी चंचल माया॥19॥

कोई किसी का नहीं है शत्रु, नहीं किसी का मित्र कोई।
कर्माधीन जगत की लीला, क्यों तूने सन्मति खोई॥20॥

शालिभद्र क्या रिद्धि पाए, नृप श्रेणिक देखन आया।
संसार भावना भा करके ही, जग बंधन से मुक्ति पाया॥21॥

-----| -----

3. वह शक्ति हमें दो

वह शक्ति हमें दो दयानिधे।
कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर-सेवा, पर-उपकार में हम,
निज जीवन सफल बना जावें॥1॥

हम दीन, दु:खी, निबलों, विकलों,
के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं भूले-भटके अटके
उनको तारें खुद तर जावें॥2॥

छल, द्वेष, कपट, पाखण्ड, झूठ।
अन्याय से निश-दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना।
शुचि प्रेम सुधा नित बरसावें॥3॥

निज आन-मान मर्यादा का,
प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया,
बलिदान उसी पर हो जावें॥4॥

-----| -----

4. मनोरथ तीन उत्तम ये

मनोरथ तीन उत्तम ये, जिनेश्वर नित्य भाता हूँ।
कृपा की आशा रखता हूँ सफल हो शीघ्र चाहता हूँ।टेर।।

परिग्रह पाप का दल-दल, फँसा हूँ, फँसता जाता हूँ।
घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता हूँ।।1।।

प्रमादी गृहस्थ जीवन है, अधूरी धर्म करणी है।
बनूँगा कब मुनि मुझमें, हो ऐसी शक्ति चाहता हूँ।।2।।

मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अन्त शुभ भाव चाहता हूँ।।3।।

दीन हूँ दीनता करता, देवता! दान तू करना।
मनोरथ पूर्ण सब करना, चरण तेरे पकड़ता हूँ।।4।।

कहे केवल सुनो 'पारस', विरुद अपना निभाना तुम।
कहूँ अब और आगे क्या? न खोजे शब्द पाता हूँ।।5।।

-----| -----

सामान्य ज्ञान विभाग

1. जयंतीबाई के प्रश्न

श्री भगवती सूत्र के 12 वें शतक के दूसरे उद्देशक के आधार से 'जयंतीबाई' के प्रश्न और भगवान के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है-

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। एक समय भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। यह समाचार सुनकर सभी नागरिक हर्षित हुए। राजा उदायन आदि वन्दनार्थ गये। प्रथम शय्यात्तर जयन्ती श्रमणोपासिका, उदायन नरेश की फूफी थी। वह अपनी भावज-राजमाता मृगावती देवी के साथ प्रभु की वंदना करने के लिए गयी। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुनकर परिषद् लौट गयी। राजा और रानी लौट गये। उस समय जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा-

1. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव शीघ्र हल्का और भारी होता है?
उत्तर- **जयन्ती!** अठारह प्रकार के पापों का त्याग करने से जीव शीघ्र हल्का होता है और अठारह पापों का सेवन करने से जीव भारी होता है।
2. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार (भव) घटाता है और किस कारण से संसार बढ़ाता है?
उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार घटाता है और 18 पापों का सेवन करने से जीव संसार बढ़ाता है।
3. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार (कर्म) को ह्रस्व करता है और किस कारण से जीव संसार को दीर्घ करता है?
उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार (कर्म) को ह्रस्व करता है और अठारह पापों का सेवन करने से जीव संसार को दीर्घ करता है।
4. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और किस कारण से जीव संसार-सागर को पार कर जाता है?
उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों के सेवन से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार-सागर को पार कर जाता है।

5. **प्रश्न-** **भंते!** जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है या परिणाम से?

उत्तर- **जयंती!** जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नहीं।

6. **प्रश्न-** **भंते!** क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे?

उत्तर- **हाँ जयंती!** सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

7.**प्रश्न-** **भंते!** सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जायेंगे, तो लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जाएगा?

उत्तर- **जयंती!** 'णो इणट्ठे समट्ठे' यह नहीं हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।

भंते! इसका क्या कारण है?

जयंती! यथा दृष्टान्त-जैसे आकाश की श्रेणी अनादि-अनन्त है। उसमें से एक-एक परमाणुखंड जितना प्रदेश एक-एक समय में निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार भवसिद्धिक जीव मोक्ष जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से खाली नहीं होगा।

8. **प्रश्न-** **भंते!** जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे?

उत्तर- **जयंती!** कोई जीव सोते हुए अच्छे होते हैं और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते हैं।

भंते! इसका क्या कारण है?

जयंती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनन्द मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए ही अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दु:ख नहीं दे पाते, यावत् परितापना नहीं उपजाते, अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं और जो जीव धर्मी हैं, यावत् धर्म से आजीविका करते हैं, वे जागते हुए अच्छे हैं। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को सुखकारी होते हैं, यावत् अपनी तथा दूसरों की आत्मा को धर्म से जोड़ते हैं।

9.-10. जिस प्रकार सोने-जागने के प्रश्नोत्तर कहे उसी प्रकार बलवान् व निर्बल और उद्यमी व आलसी के विषय में भी कहना चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा, वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च में अपनी आत्मा को जोड़ेगा।

11. **प्रश्न-** **भंते!** श्रोत्रेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बांधता है?

उत्तर- **जयंती!** आयुष्य-कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ़ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो, तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो, तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं बांधता, असातावेदनीय कर्म बारम्बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

12. से 15.- जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में कहा, उसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के विषय में भी कहना चाहिये।

जयंतीबाई श्रमणोपासिका अपने प्रश्नों के उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण संतोष हुआ। वह देवानन्दा की तरह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गयी।

-----| -----

2. श्रावकजी के चार विश्राम

जैसे- 1. भार ढोने वाले भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर रखे और पहले कंधे को विश्राम दे- यह पहला विश्राम है। 2. भार को चबूतरे आदि पर रखकर मल-मूत्र की बाधा दूर करे, खा-पीकर भूख-प्यास की बाधा दूर करे- यह दूसरा विश्राम है। 3. रात्रि को धर्मशाला आदि में रात भर रहे सोकर दिन भर का श्रम दूर करे- यह तीसरा विश्राम है। 4. जहाँ पर भार पहुँचाना है, ठेठ वहाँ भार पहुँचा दे और निश्चिंत हो जाए- यह चौथा विश्राम है।

इसी प्रकार- 1. बारह व्रत और नवकारसी आदि का प्रत्याख्यान धारण करे, यह श्रावक का पहला विश्राम है। 2. प्रतिदिन सामायिक और

देशावकाशिक व्रत सम्यक् पाले, यह श्रावक का दूसरा विश्राम है। 3. महीने में छः दिन प्रतिपूर्ण पौषध सम्यक् पाले, यह श्रावक का तीसरा विश्राम है। 4. अंतिम समय में संलेखना, संथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित समाधिमरण स्वीकार करे, यह चौथा विश्राम है।

-----| -----

3. देव, गुरु, धर्म का स्वरूप

अरिहन्तो महदेवो जावज्जीवं✦ सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णतं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं॥1॥

अरिहन्त प्रभु मेरे देव हैं, सम्यक् प्रकार से महाव्रत का पालन करने वाले साधुजन मेरे गुरु हैं और जिनेश्वर देव द्वारा प्ररूपित तत्त्व ही मेरा धर्म है। यावत् जीवन के लिये यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।

देव – सिद्ध और अरिहन्त प्रभु जो राग-द्वेष से विमुक्त हैं, वे ही हमारे देव हैं। पंच परमेष्ठि पद में अरिहन्त और सिद्ध देव पद पर प्रतिष्ठित हैं। अरिहन्त और सिद्ध देव में अन्तर यह है कि सिद्ध भगवान ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मों को सर्वथा क्षय कर दिया है, वे अशरीरी अयोगी बनकर अजर, अमर पद को प्राप्त कर चुके हैं जबकि अरिहन्त भगवान ने चार घनघाती कर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय का क्षय किया है। वे भी आयुष्य पूर्ण होने पर सिद्ध बन जाते हैं। अरिहन्त भगवान तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। धर्म का मार्ग बताते हैं। उनकी वाणी सुनकर गणधर सूत्र रूप में गुंथन करते हैं।

अरिहन्त के कई सार्थक नाम हैं-

अरिहन्त – शत्रुओं का नाश करने वाले।

✦ आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों में 'जावज्जीवाए' के स्थान पर 'जावज्जीवं' शब्द है, जावज्जीवाए शब्द रखने से छंदोभंग होता है।

जिन – राग-द्वेष को जीतने वाले।

वीतराग – राग-द्वेष आदि कषायों से रहित।

तीर्थंकर – साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ की स्थापना करने वाले।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी – हस्तामलकवत सबकुछ जानने वाले, सबकुछ देखने वाले।

परमात्मा – परम 'शुद्ध' आत्मा।

जैन धर्म क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, संसारी देवताओं को अपना इष्ट नहीं मानते हैं। जो स्वयं काम, क्रोध आदि विकारों में फँसे हैं। वे दूसरे के विकार रहित होने में क्या आदर्श हो सकते हैं? इसलिये जैन धर्म में देव वे ही माने जाते हैं जो राग-द्वेष को जीतने वाले, कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले परम शुद्ध आत्मा हों।

गुरु – गुरु पद में आचार्य, उपाध्याय और साधु तीन पदों का समावेश है। ये तीनों पद वीतराग देव की आज्ञा आराधक हैं।

आचार्यजी – जिनशासन के नायक एवं संचालक होते हैं।

उपाध्यायजी – जैन आगमों में पारंगत प्रकाण्ड पण्डित होते हैं, वे शास्त्रों का अध्ययन करते हैं एवं कराते हैं।

साधुजी – सर्वत्यागी, निर्ग्रन्थ मुनिराज होते हैं।

ये तीन पद मोक्षमार्ग के साधक होते हैं तथा निम्न पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं-

1. अहिंसा – मन, वचन, काया से किसी भी जीव की हिंसा न करना, न करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।

2. सत्य – मन, वचन, काया से न झूठ बोलना, न बोलवाना, न बोलने वाले का अनुमोदन करना।

3. अचौर्य – मन, वचन, काया से न स्वयं चोरी करना, न दूसरों से करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।

4. ब्रह्मचर्य – मन, वचन, काया से न अब्रह्मचर्य का सेवन करना, न करवाना, न करते हुए का अनुमोदन करना।

5. अपरिग्रह – मन, वचन, काया से परिग्रह आदि न रखना, न रखवाना, न रखने वाले का अनुमोदन करना।

गुरु के निर्मल जीवन एवं गुण सम्पन्न स्वरूप को दर्शाने वाले कई सार्थक नाम हैं–

श्रमण – संयम व तप में श्रम करने वाले।
निर्ग्रन्थ – राग-द्वेष की समस्त ग्रन्थियों को छोड़ने वाले।
भिक्षु – निर्दोष भिक्षावृत्ति से संयम साधना करने वाले।
यति – पाँच इन्द्रियों का दमन करने वाले।
मुनि – पाप कर्मों में मौन रहने वाले (निरवद्य वचन बोलने वाले)।
ऋषीश्वर – छः काया के जीवों की रक्षा करने वाले।
योगीश्वर – मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकने वाले।
साधु – साधना करने वाले।

गुरु आरम्भ परिग्रह से रहित इन्द्रियों का दमन करने वाले तथा कषायों का शमन करने वाले, समस्त पाप कर्मों से निवृत्त होते हैं। उनका उठना, बैठना, बोलना, चलना, खाना-पीना, विवेकपूर्वक होता है। सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले, परिषह को सहन करने वाले, निर्दोष भिक्षाचर्या करने वाले होते हैं।

धर्म– जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करे (रक्षा करे) उसे धर्म कहते हैं। जिनेश्वर देवों द्वारा बताया हुआ आचरण धर्म है। यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप है। पापकर्मों का त्याग, कषायों पर विजय पाना, देव, गुरु, धर्म की भक्ति, ज्ञान ध्यान, स्वाध्याय आदि से आत्मा को विशुद्ध एवं पवित्र करना और चारित्र का पालन करना धर्म है। यह श्रावक धर्म एवं मुनि धर्म दो प्रकार का है। (अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही जैन धर्म है।)

1. अहिंसा– सामान्य रूप में हिंसा का अर्थ प्राणियों के प्राणों का हनन करना माना जाता है किन्तु जैन दृष्टि में हिंसा शब्द बहुत विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैन दृष्टि के अनुसार वह सब हिंसा है जो दूसरों को मानसिक, वाचिक एवं कायिक दृष्टि से कष्ट पहुँचाये। अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों की मन, वचन, काया से हिंसा न करना, न करवाना, न अनुमोदन करना अहिंसा है। जैन धर्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस आदि में भी जीव

मानता है। उनकी हिंसा का भी निषेध करता है। हिंसा होने पर राग-द्वेष की परिणति होती है और उसमें पाप कर्म का बन्ध होता है। पाप आत्मा को दुर्गति में ले जाने वाला होता है और अहिंसा दुर्गति में गिरते हुए को बचाती है। अतः अहिंसा को भी धर्म कहा है। अहिंसा व्रत सभी धर्मों का प्रमुख एवं जिन प्रवचन का सार है। अहिंसा सभी धर्मों का आधार है।

2. संयम - इन्द्रिय और मन का निग्रह करना संयम कहलाता है। अहिंसा धर्म के पूर्ण पालन के लिये संयम आवश्यक है। सावद्य पापकार्यों से निवृत्त होना संयम है, जिनके द्वारा नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है। मन, वचन और काया का नियमन करना इनकी प्रवृत्ति में यतना रखना संयम है। असंयम से होने वाले आश्रव को रोकना संयम धर्म है। पाँच इन्द्रिय का निग्रह, पाँच अव्रतों का त्याग, चार कषाय पर विजय तथा मन, वचन, काया की विरति को संयम कहा जाता है।

3. तप- इच्छाओं का निरोध तप है। जैन धर्म का एकमात्र लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करना है। राग-द्वेष से मुक्त होने के लिए संयम द्वारा नवीन कर्मों का बन्ध रोका जाता है तथा तप के द्वारा पुराने कर्मों का क्षय होता है। जैन धर्म में तप का भी विशिष्ट अर्थ है। तप का अर्थ सिर्फ शारीरिक (देह) दमन नहीं है वरन् इन्द्रियों और वासनाओं पर विजय प्राप्त करना भी तप की श्रेणी में आता है।

सांसारिक पदार्थों की लालसा से किया गया तप, शुद्ध तप न होकर मात्र काया क्लेश होता है इसलिये तीर्थंकर देवों ने फरमाया है :-

1. इस लोक के भौतिक सुखों की लालसा से तप न करें।
2. परलोक के भौतिक सुखों की इच्छा से तप न करें।
3. यश, कीर्ति एवं पूजा महिमा के लिये तप न करें।
4. केवल कर्म निर्जरा के हेतु ही तप की आराधना करें। जैन दर्शन में बारह प्रकार का तप बताया गया है। **बाह्य तप**- अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस परित्याग, काया क्लेश, प्रतिसंलीनता।

आभ्यन्तर तप- प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग।

इस प्रकार तपस्या एकान्त आत्म शुद्धि, विषय विकार एवं कषाय को दूर करने एवं कर्म की निर्जरा के लिये की जाती है।

-----| -----

4. रत्नत्रय

रत्नत्रय का अर्थ- सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र है जो मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि, मोक्ष मार्गः

सम्यक् दर्शन- आत्म स्वरूप की प्रतीति, आत्म स्वरूप का विश्वास, वीतराग एवं वीतराग प्ररूपित तत्त्वों पर आस्था होना सम्यक् दर्शन है। जिसे अपनी आत्म सत्ता पर विश्वास है, उसे ही परमात्मा की सत्ता पर विश्वास हो सकता है। जिसको अपनी आत्मा की सत्ता पर आस्था नहीं है, उसे कर्म पर विश्वास नहीं हो सकता। जिसका कर्म पर विश्वास नहीं उसका लोक, परलोक पर विश्वास नहीं हो सकता तो फिर मोक्ष पर विश्वास कैसे हो?

जो आत्मवादी है, वही मोक्ष का साधक है। जड़ और चेतन, स्व और पर, आत्मा और पुद्गल का भेद विज्ञान करना सम्यक् दर्शन है जिसे आत्म बोध एवं चेतना का बोध हो जाता है, वह समझ लेता है कि शरीर एवं आत्मा अलग-अलग है। जीव-अजीव आदि तत्वों के यथार्थ स्वरूप पर अन्तः करण के दृढ़ संकल्प के साथ श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान- आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। आत्म विज्ञान की उपलब्धि वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना (जैसा है वैसा समझना)। जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नव तत्त्वों का यथार्थ रूप से ज्ञान करना सम्यक् ज्ञान है।

सम्यक् ज्ञान के द्वारा साधक अपने स्वरूप को समझ कर अपने विकारों को दूर करने का विचार करता है। राग-द्वेष को क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त करना सम्यक् ज्ञान की परिपूर्ण अवस्था है।

सम्यक् चारित्र- आत्मा के अस्तित्व की सही प्रतीति हो जाने पर, उस ज्ञान के अनुसार आचरण करने पर ही साधना परिपूर्ण बनती है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के अनुसार अहिंसा, सत्य आदि सदाचार का पालन करना सम्यक् चारित्र है। विभाव, मोहजनित विकल्प एवं विचारों को छोड़कर स्वभाव स्वरूप में रमण करना, सम्यक् चारित्र है। यही विशुद्ध संयम है। सर्वोत्कृष्ट शील है।

गृहस्थ के देश सम्यक् चारित्र होता है। साधु के सम्यक् चारित्र की

पूर्णता भी केवलज्ञान के बाद ही होती है।

पहले सम्यक् दर्शन (सच्ची श्रद्धा) होता है। सम्यक् दर्शन होते ही उसी क्षण सम्यक् ज्ञान होता है और इसके बाद सम्यक् चारित्र होता है। मोक्ष की मंजिल पर पहुँचने के पहले सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान रूपी दो चक्षु तथा सम्यक् चारित्र रूपी पैरों की आवश्यकता होती है क्योंकि मार्ग को देखने के लिए ज्ञान दर्शन रूपी चक्षु के साथ मंजिल तक पहुँचने के लिए चलने हेतु पैर आवश्यक है। इस प्रकार सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मिलकर मोक्ष के साधन होते हैं। ज्ञान और क्रिया दोनों की परिणति ही रत्नत्रय है और रत्नत्रय की परिपूर्णता का नाम मोक्ष है। यही जीवन का चरम विकास है।

-----| -----

सद्गुरु के चरणों में हमने, जिस दिन से शीश झुकाया है।
उस दिन से मेरा जन्म हुआ और सफल हुई यह काया है॥

-----| -----

क्रोध प्रीति का नाश करता है।
मान विनय का नाश करता है।
माया मित्रता का नाश करती है।
लोभ सर्वनाश करता है।

-----| -----

5. सुभाषित

बुरा-बुरा सबको कहूँ, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूं आपणो, तो मोसु बुरा न कोय।।1।।

कहवा में आवे नहीं, अवगुण भर्‌या अनन्त।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवन्त।।2।।

करुणानिधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रन्थि भेद।।3।।

पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद्ध विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार।।4।।

माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष।।5।।

आत्म निन्दा शुद्ध भणी, गुणवन्त वन्दन भाव।
राग द्वेष पतला करी, सबसे खमत खमाव।।6।।

छूटूं पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय।।7।।

परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार।
अन्त समय आलोयणा, करूँ संथारो सार।।8।।

तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख घन।।9।।

अरिहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलिभाषित शास्त्र, यही जैनमत मर्म।।10।।

आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार।।11।

क्षण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम।।12।।

-----| -----